21वीं सदी की ओर

विज्ञान के बढ़ते चरण

हरीश गोयल



अभिनव प्रकाशन, अजमेर

ISBN—81—85245—21—5

☐ प्रथम संस्करण 1989

☐ प्रकाशक : अभिनव प्रकाशन
ब्रह्मपुरी रोड, पोस्ट बाक्स नं. 118
अजमेर-305 001

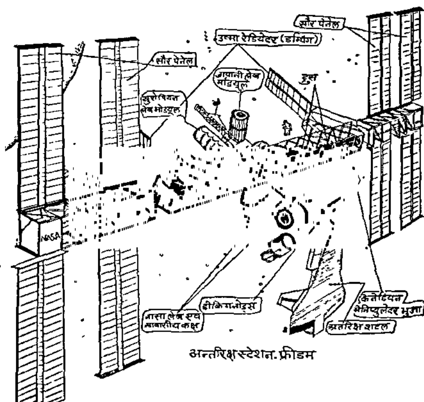
☐ मुद्रक : इण्डिया प्रिण्टर्स,
कचहरी रोड, अजमेर

☐ मूल्य : पचास रुपये

EKKISAVI SADI KI AUR : VIGYAN KE BADHATE CHARAN
(Scientific-Essays) By Harish Goyal Rs 50.00

क्रम :

□□



अन्तरिक्षस्टेशन.फ्रीडम

ंगल-ग्रह आदि अन्तर्ग्रहीय यात्राओं का सम्भावित–

अन्तरिक्ष स्टेशन : फ्रीडम : (एक-परिकल्पना)

बाह्य-अन्तरिक्ष में जीवन

क्या बाह्य अन्तरिक्ष में जीवन है ? इस प्रश्न पर सदियों से विचार किया जा रहा है, लेकिन जब-जब वैज्ञानिक खोजें होती हैं, तो विश्व भर में हलचल मच जाती है, जैसा कि हाल के दिनों में मची हुई है। इसका एक सरल सा उत्तर 'हां' ही मानव के दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन ले आयेगा। तब हम इस ब्रह्माण्ड में अकेले नहीं होंगे। हम चौतरफा ब्रह्माण्ड में बिखरी सभ्यताओं से घिर जायेंगे। हो सकता है कि हम आकाशगंगा के महान् साम्राज्य के सदस्य बन जायें या फिर हम ब्रह्माण्ड में दूर-दूर तक छितरायी सभ्यताओं के सम्राट बन जायें। लेकिन क्या एक सरल सा उत्तर 'हां' करना इतना आसान है ?

वैज्ञानिकों के पास ऐसे कौन से आधार हैं, जिससे बाह्य-अन्तरिक्ष में जीवन की सम्भावना अभिव्यक्त की गई है।

पृथ्वी पर उल्का-पिण्डों की वर्षा होती रहती है। इनमें से कुछ पिंडों में जीवन की आधारभूत सरचनाएं 'अमीनो अम्ल' पाये गये। सन् 1950 में मुरे केन्टकी में गिरे उल्का पिण्ड में 'साइटोसीन' पाया गया। यह डी. एन. ए. की रचना के उन चार नाइट्रोजनीय क्षारों में से एक अणु है जो जीवन का प्रमुख आधार है। विज्ञानी बेकरेन जी मिन्चीन ने 'आर्गिल' उल्का-पिण्ड के नमूने में 'पेरेफिन' के सदृश अणु तथा विज्ञानी फ्रेड्रिक डी सिसलर ने मुरे 'उल्का-पिंड' में चूड़ियों के सदृश जीवाणु पाये। विज्ञानी जार्ज क्लॉज ने उल्का-पिण्ड 'कार्बोनीशसकोन्ड्राइट' में 'जीवाश्म-शैवाल' पाये। इसी प्रकार से 'जीवाश्म परागकण' उल्का-पिण्डों में पाये गये। विज्ञानियों ने स्वयं के नाम के आधार पर बाह्य अंतरिक्ष के इन जैविक-कणों के नाम रखे-'सिलेस्टा-इट्स-स्टेप्लिन' एवं 'क्लासिस फेरा स्टेप्लित'। विज्ञानी टीमोफेव ने अपने नाम के आधार पर मिघी में गिरे उल्कापिंड में पाया गयाजीवाश्म-शैवाल 'प्रोटोस्फीरिडी' का नाम 'प्रोटोट्रैचो स्फेरीडियम स्टेप्लिनी टीमोफेव' रखा।

विज्ञानी बर्थलोमेव नाजी तथा क्लॉज ने उल्कापिंड में 'डी.एन.ए.' सदृश रचना पायी। सन् 1964 में लॉजेला में हुई कान्फ्रेंस में इन विज्ञानियों ने

'**आर्गिल-उल्कापिंड**' में '**पोरफाइरीन**' पाया गया। '**पोरफाइरीन**' अणु से लाल रक्त कणिका हीमोग्लोबीन तथा पत्तियो में पर्णहरित का निर्माण होता है। सन् 1969 मे विज्ञानी बोनिस्लि पॉनाम्परूयूमा ने मुर्सिचन में गिरे उल्का-पिंड मे 17 प्रकार के '**अमीनो-अम्ल**' की पहचान की।

इस प्रकार उल्का पिण्डो में जीवन के मूलभूत अणुओं का पाया जाना बाह्य-अंतरिक्ष मे जीवन की ओर संकेत करता है।

बाह्य-अंतरिक्ष मे जीवन की खोज जोर-शोरों से चल रही है। रेडियो-दूरदर्शी की सहायता से बाह्य-अंतरिक्ष के पिडो से आने वाले '**कृत्रिम-संकेतों**' को अंकित करने का प्रयास किया गया है। यह प्रयास अभी जारी है। ये कृत्रिम-संकेत बाह्य-अंतरिक्ष की एक अति-विकसित सभ्यता के द्वारा भेजे जाते हैं। इन कृत्रिम-संकेतो को 21 से. मी. हाइड्रोजन की तरंग-लंबाई पर अंकित करने का प्रयास किया गया है।

रेडियो खगोलविंद फ्रैंक ड्रेक ने कृत्रिम संकेतों को अंकित करने के लिये एक योजना बनाई जो प्रोजेक्ट '**ओजमा**' कहलाती है। ओजमा का आशय है '**औज**' की काल्पनिक भूमि की राजकुमारी के लिये। इस प्रोजेक्ट का शुभारभ 1959 मे हुआ। विज्ञानी ड्रेक ने दूरदर्शी को नक्षत्र '**ताओसेटी**' (सीट्स तारामण्डल) तथा नक्षत्र '**एप्सिलॉन एरिडेनी**' की ओर लक्षित किया।

पार्श्व-शोर को समाप्त करने के लिये रेडियो-दूरदर्शी के डिश को फोकस पर ही अभिग्राही होर्न जड़े गये। एक होर्न लक्षित तारे से रेडियो-संकेत प्राप्त करता तथा दूसरा होर्न लक्षित नक्षत्र से परे पार्श्व-शोर तथा विद्युत-चुम्बकीय हलचलो को अंकित करता।

8 अप्रेल 1960 का वह हलचल भरा दिन। भोर के ठीक चार बजे थे। नक्षत्र '**ताओसेटी**' दक्षिण छोर के क्षितिज से ऊपर उठ रहा था। रेडियो-दूरदर्शी के एन्टेना को '**ताओसेटी**' की ओर लक्षित कर दिया गया। नक्षत्र के ऊपर उठने के साथ-साथ एन्टेना भी घूमता। रिसीवर के ऑन करते ही पहली बार मनुष्य ने बाह्य-अंतरिक्ष में अवस्थित बौद्धिकता समन्वित सभ्यता के संदेश सुने। इसके पश्चात् ड्रेक ने एन्टेना का रुख नक्षत्र '**एप्सिलॉन एरिडेनी**' की ओर किया। कुछ समय पश्चात् ही रेडियो-संकेत आने प्रारम्भ हो गये। उन रेडियो संकेतों को दो तरीको से अंकित किया गया। रेडियो-कम्पनों को एक घूमते हुये पेपर पर एक सूई द्वारा अंकित किया गया। विज्ञानियो के उस समय आश्चर्य की सीमा नही रही जब सूई 8 पल्स प्रति सैकिण्ड की गति अंकित

कर रही थी। ये पल्सेज इतने अधिक 'अचूक' और नियमित रूप से आ रहे थे कि उनका यह दृढ़ विश्वास हो गया कि ये रेडियो-संकेत बाह्य-अन्तरिक्ष की अति-विकसित सभ्यता द्वारा भेजे जा रहे थे। जब लाउडस्पीकर ऑन किया गया तो उन रेडियो-संकेतो को नियमित-पल्सेज के रूप में सुना गया। यह सुनिश्चित करना आवश्यक था कि ये रेडियो-संकेतो 'एप्सीलॉन एरिडेनो' से ही आ रहे हैं, इसके लिये उन्होंने एन्टेना को घुमाया। तुरन्त रेडियो-संकेत आना बन्द हो गये। यह इस बात को स्पष्ट करता है कि ये रेडियो संकेत निःसंदेह, लक्षित रेडियो-नक्षत्र द्वारा भेजे जा रहे थे।

विज्ञानी फ्रेंक ड्रेक ने एक समीकरण स्थापित किया। इसमें N बाह्य-अतंरिक्ष में सभ्यताओं की संख्या है जो हमसे सम्पर्क स्थापित करने की क्षमता रखती हों। यह संख्या गेलेक्सियो में अवस्थित तारों का केवल पांच प्रतिशत भाग ही है, फिर भी सभ्यताओं की संख्या लगभग एक करोड़ तक पहुँच जाती है। फ्रेंक ड्रेक का कहना है कि इस संख्या के बारे मे मतभेद हो सकता है लेकिन अधिकाश खगोलविद् इस बात से सहमत हैं कि ये सभ्यताएं भारी तादाद मे मौजूद होंगी। पृथ्वी के रेडियो-प्रोग्राम को अभी अधिक समय नही हुआ है। केवल पचास वर्ष बीते है। बाह्य-अंतरिक्ष में सभ्यताओ की खोज के हिसाब से ये वर्ष इतने कम है कि इसे हम रेडियो-प्रोग्राम की शैशवास्था कह सकते है।

विज्ञानी पॉल होरोविट्ज, अरीसिवो प्यूटोरिको स्थित रेडियो-दूरबीन से कृत्रिम-संकेतो की तलाश मे लगे हुए हैं। उन्होंने स्टेनफोर्ड मे एक ऐसी प्रणाली की खोज की है जो 'सूटकेस-सेटी' कहलाती है। इस उपकरण को रेडियो दूरबीन से जड़ दिया गया। यह उपकरण रेडियो बैण्ड की 1,28,000 चैनल को अंकित करती है। 'सूटकेस-सेटी' प्रणाली का उपयोग हार्वर्ड स्थित 26-मीटर रेडियो दूरबीन में किया जा रहा है।

इसी प्रकार से एक और नई प्रणाली विकसित की गई है जो 'मेटा' यानि 'मेटा चैनल एक्स्ट्रारेस्ट्रियल एसे' कहलाती हैं। इससे रेडियो बैण्ड की चैनल की संख्या अब अस्सी लाख हो गई है।

हो सकता है कि बाह्य-अंतरिक्ष की सभ्यता हमारे सौर परिवार के निकट ही हो और वह विज्ञानी जेक बेनी के रेडियो-प्रोग्राम को सन् 1940 से समझने प्रयत्न कर रही हो।

क्या बाह्य अंतरिक्ष में सभ्यता की खोज के हमारे प्रयास निरर्थक साबित होगे?

नही, हमें आशावान होना चाहिये। इसके ठोस खगोलीय आधार हैं। हमारा सूर्य इस आकाश गंगा में अनोखा नहीं है। यह आकाशगंगा में अवस्थित सौ करोड़ तारों जैसा एक साधारण सा तारा है। जिस प्रकार से हमारे सूर्य के चारों तरफ ग्रह घूमते हैं, इसी प्रकार अन्य तारो के चारों तरफ भी ग्रह घूमते होंगे। उन ग्रहो मे से एक ग्रह हमारी पृथ्वी सरीखा हो सकता है, जहां जीवन हो, सभ्यता हो। जिस प्रकार से सूर्य के चारो ओर हमारी पृथ्वी का निर्माण हुआ, उसी प्रकार अन्य तारों के चारों ओर भी ग्रहों का निर्माण हुआ होगा। जिस प्रकार से जीवन की परिस्थितिया हमारी पृथ्वी पर पनपी। ऐसी ही परिस्थितियां अन्य ग्रहो पर भी पनपी होंगी। जिस विकास-क्रम से मनुष्य इस पृथ्वी पर अस्तित्व मे आया ऐसा ही विकास क्रम अन्य तारो के ग्रहो पर रहा होगा तथा वहा सभ्यतायें पनपी होंगी। निर्माण की यह प्रक्रिया सब जगह समान रही होगी। भौतिक नियम ब्रह्माण्ड के सभी पिण्डो पर समान रूप से लागू होते हैं। अत: यह आश्चर्य नही होना चाहिये कि बाह्य-अंतरिक्ष के अन्य पिण्डो मे जीवन व्याप्त है। जो तारा हमारे सूर्य से पहले जन्मा, वहा की सभ्यतायें हमसे प्राचीन होंगी। दूसरे शब्दो मे वे हमसे अधिक उन्नत होंगी। हो सकता है, अन्य तारों की सभ्यता इतनी परिपक्व तथा विकसित हो गई हो कि वह हमसे सम्पर्क स्थापित करने मे समर्थ हो और वह दिन दूर नही जब हमारा उनसे सम्पर्क हो जायेगा। कार्ल सेंगा सहित अनेक विज्ञानी आशान्वित है।

हम बाह्य अन्तरिक्ष की सभ्यताओं से सम्पर्क स्थापित क्यो नही कर पा रहे है?

इसका कारण है, नक्षत्रों के बीच की दूरी। एक नक्षत्र से दूसरा नक्षत्र इतनी दूर है कि सम्पर्क स्थापित करने मे कई वर्ष लग जायेंगे।

क्या अन्य तारे भी **'ग्रहीय-प्रणाली'** से युक्त है?

इसका पता हाल ही में चला है। बाह्य-अंतरिक्ष में जीवन की खोज की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम है। पिछले दो वर्षों से खगोलविदो को सूर्य के अतिरिक्त अन्य तारों के ग्रहो से युक्त होने के ठोस प्रमाण मिले है।

खगोल शास्त्री बैंडफोर्ड स्मिथ ने नक्षत्र 'बीटा पिक्टोरिस' को ग्रहों से युक्त पाया। वे एरिजोना की रेडियो-दूरबीन से परीक्षण कर रहे थे। 'बीटा पिक्टोरिस' तारा पृथ्वी से पचास प्रकाश-वर्ष दूर स्थित है। उन्होने आकाश मे क्षीण अंतारकीय **'बादलों'** को देखा। ये बादल **'डिस्क'** मे बदल गये थे। **'डिस्क'** के आकार तथा हमारी ग्रहो की उत्पत्ति की समझ से यह

निष्कर्ष निकाला गया है कि 'बीटा-पिक्टोरिस' का 'ग्रहीय-पदार्थ' परस्पर संयुक्त होने लगा है। पदार्थ के संयुक्त होने से तात्पर्य किसी धूलिकण के संयुक्त होने से नही है, बल्कि बड़ी-बड़ी ईंट जैसे पदार्थ के संयुक्त होने से है। विज्ञानी ब्रेडफोर्ड स्मिथ इस बात का दावा करते हैं कि निश्चय ही पृथ्वी सरीखा पिण्ड 'बीटा-पिक्टोरिस' के निकट मौजूद है जो दिखाई नही पड़ रहा है।

हमारे सौर मण्डल का ही हम उदाहरण क्यो नही ले ? 'दसवां-ग्रह' हमें दिखाई नही पड़ा था लेकिन अब इसे खोज निकाला गया है।

पृथ्वी के निर्माणकारी तत्व केवल 'बीटा-पिक्टोरिस' के चारों तरफ ही मौजूद नही है, बल्कि करीब पृथ्वी के समीपस्थ पचास तारो के चारो ओर मौजूद है। सन् 1983 मे इरास-उपग्रह ने इन तारो के आसपास 'अतिरिक्त इन्फ्रारेड विकिरण' अंकित किये। यह अतिरिक्त इन्फ्रारेड विकिरण तारों के चारों तरफ अंतर्तारकीय धूलिकण बादलो की ओर संकेत करते हैं। इन बादलों से ग्रहों का निर्माण होता है।

यह ग्रह 'वाइस ब्रोक-8' नामक तारे के चारों ओर चक्कर लगा रहा है। तारा 'वाइस ब्रोक-8' यहा से 21 प्रकाश-वर्ष दूर है। यह ग्रह पृथ्वी से दस गुना बड़ा है।

लेकिन विज्ञानी लेवी का विचार है कि यह पिण्ड ग्रह न होकर युग्म-नक्षत्र प्रणाली का एक सदस्य भी हो सकता है। हो सकता है कि यह पूर्व मे प्रज्जवलित नही हो पाया हो और हमें एक ग्रह सदृश दिखाई पड़ता हो।

यह पिण्ड बृहस्पति के आकार का है, लेकिन बृहस्पति भी तनिक बड़ा होता तो तारा ही होता। लेवी के अनुसार हमे एक ऐसे दूरदर्शी की आवश्यकता है जो आकाश मे निर्मित किया गया हो तथा वह आकाश मे घूमते हुये किसी तारे की 'धचक' का अचूक माप ले सके। इससे यह पता लग सकेगा कि उक्त तारा अपने सदस्यीय 'ग्रह' के गुरुत्वीय आकर्षण के कारण ही 'धचक' रहा है।

लेकिन इसमे दो राय नही है कि हमारे ब्रह्माण्ड में पृथ्वी सरीखे ग्रह सामान्य रूप से व्याप्त है। वह दिन दूर नही है जब हम पृथ्वी सरीखे ग्रह को हमारे सौर परिवार के बाहर खोज पायेंगे जहां जीवन होगा और उसका जीवन-संगीत हम सुन पायेंगे।

□□

क्षुद्र-ग्रह : नई रोशनी

'क्षुद्र-ग्रहों' को ज्यादा नही समझा जा सका है। क्षुद्र ग्रह इतने अधिक छोटे पिंड है कि इनकी हमेशा उपेक्षा की गई। आर्थर क्लार्क ने विज्ञान कथा **'रेन्देवू टू रामा'** मे इस ओर अवश्य जनमानस का ध्यान आकृष्ट किया लेकिन अब इन पिंडों के अध्ययन के लिये ठोस योजनाएं बन चुकी है।

हाल ही मे यह निर्णय लिया है कि बृहस्पति के अध्ययन के लिये भेजा जाने वाले यान गेलिलियो के **'पथ'** में परिवर्तन किया जायेगा और इसे क्षुद्र-ग्रह **'29-एम्फिड्राइट'** की ओर भेजा जायेगा। फ्रँको-सोवियत प्रोजेक्ट **'मार्स-फोबोस'** भी मंगल और बृहस्पति के बीच क्षुद्र ग्रहों की खोज करेगा। यह 1981 में छोडा गया था। फ्रँको-सोवियत प्रायोजना के तहत छोड़ा जाने वाला एक और यान न केवल शुक्र ग्रह का अध्ययन करेगा बल्कि क्षुद्रग्रह और धूमकेतु का भी अध्ययन करेगा। यह यान 1991 मे छोड़ा जायेगा।

ये क्षुद्र-ग्रह मगल और बृहस्पति के बीच बहुतायत से पाये जाते हैं। ऐसा नही हैं कि ये बृहस्पति के पार अन्य ग्रहो के निकट नही पाये जाते हो, लेकिन उनकी सख्या बहुत कम है। क्षुद्र-ग्रह **'चुल-II'** सैर करता हुआ युरेनस के इतना निकट पहुच जाता है कि यह उसका एक खोया हुआ उपग्रह प्रतीत होता है।

क्षुद्र-ग्रह विभिन्न आकार के छोटे-छोटे तथा चट्टानी पिंड होते है। इनका व्यास सामान्यतया 800 कि. मी. से कम होता है। क्षुद्र ग्रह **'सीरस'** अत्यंत विशाल पिंड है। इसका व्यास 1025 कि. मी. है। यह क्षुद्र ग्रहो मे सबसे बडा पिंड है। केवल 30 अन्य क्षुद्र ग्रहों का पता चला है जिनका व्यास 200कि. मी. से अधिक है। अन्यथा अन्य पिंड अत्यंत छोटे है। सीरस के अतिरिक्त अन्य विशाल पिंड जो 200 कि. मी. से अधिक हैं, उनमे प्रमुख क्षुद्र ग्रह पलास, जूनो, यूनोमिया और वेस्टा हैं।

ये पिंड ग्रहों से बहुत मिलते जुलते हैं अतः इन्हें क्षुद्र-तारो की अपेक्षा क्षुद्र-ग्रह कहना ज्यादा उचित है। इनका निर्माण भी अन्य ग्रहो की तरह हुआ। मंगल और बृहस्पति के मध्य एक ग्रह और होना चाहिये (टाइट्स बोड नियम के अनुसार)। क्योकि अन्य ग्रहों की स्थिति टाइट्स बोड्स के नियम की पालना करती है। इस नियम के अनुसार यह ग्रह 2.8 एस्ट्रॉनामिक यूनिट दूर होना चाहिये लेकिन सीरस की सूर्य से दूरी भी यही है, तो क्या सीरस एक ग्रह है? यह किसी ग्रह से बहुत छोटा है अतः यह क्षुद्रग्रह कहलाता है।

सूर्य के आकर्षण से क्षुद्र-ग्रहों की कक्षाएं निर्धारित की जाती हैं। इनकी कक्षाएं लगभग वृत्तीय हैं तथा ये उसी तल में पाये जाते है, जिस तल मे ग्रह अवस्थित है। 'सीरस' की संहति 5.9x 10-10 सोलर मासेज तथा 'पलास' की संहति 1.08X 10-9 सौलर मासेज है। इनकी सहतियां पृथ्वी से 1600 गुना कम हैं।

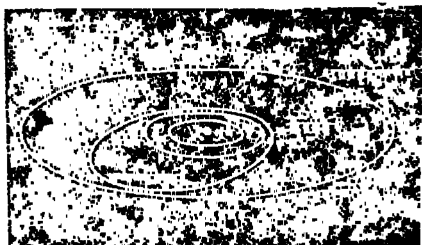
क्षुद्र-ग्रह भी ग्रहो की तरह सूर्य के प्रकाश को पारावर्तित करते है। इनकी द्यु ति परिवर्तन से पता चलता है कि ये पिंड भी घूर्णन करते है। इससे यह भी पता चला कि इन पिंडों की सतह काफी उबड़-खावड है। इनका घूर्णन काल केवल कुछ घटों का होता है, लेकिन कुछ क्षुद्र-ग्रह एक घूर्णन मे कई-कई साल ले लेते हैं।

क्षुद्र-ग्रह की द्यु ति से केवल उसके आकार का ही पता नही चलता लेकिन रासायनिक संघटन भी ज्ञात किया जा सकता है। क्षुद्रग्रहों की स्पेक्ट्रल-पट्टियों से पता चलता है कि इनकी सतह में रासायनिक तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। इसके आधार पर क्षुद्रग्रहो को अनेक समूहों मे रखा गया है। ग्रुप-'सी' कार्बोनीशस क्षुद्र-ग्रह कहलाता है। इसमे कार्बन तत्व प्रमुख है। सौर मंडल के तीन चौथाई क्षुद्र ग्रह इसी समूह के हैं। ये अत्यन्त काले पिंड हैं तथा 'कार्बोनीशसकोन्ड्राइट' उल्कापिंडों के समान हैं जो प्रायः पृथ्वी पर गिरते हैं। ग्रुप 'एस' के क्षुद्र-ग्रहों में सिलिकेट तथा ग्रुप 'एम' में लौह तथा निकल तत्व प्रमुख है। क्षुद्र ग्रहो का ग्रुप 'सी' क्षुद्रग्रह पट्टिका (एस्टराइड वैल्ट) के बाहरी भाग में मौजूद है यानि सूर्य से दूर ग्रुप 'एस' की प्रचुरता पट्टिका के भीतरी भाग में है। क्षुद्र ग्रहों का ग्रुप 'सी' कार्वोनीशस कोन्ड्राइट उल्कापिंड से मिलता है ग्रुप 'एम' चट्टानी उल्कापिंड तथा ग्रुप 'एम' धात्विक उल्कापिंड से मिलता है अत: क्षुद्र-ग्रह पट्टिका उल्का-पिंडों का एक बहुत बडा खजाना है।

ये उल्का पिंड इसी 'क्षुद्र ग्रह पट्टिका' से पृथ्वी की ओर आकृष्ट होते हैं और इसके धरातल से टकराते हैं। छोटे उल्कापिंडों के अतिरिक्त क्षुद्र ग्रहों का मलबा 'एस्टरॉइड-बैल्ट' से पृथक होकर पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों की ओर पहुंचता है। इस मलबे के कण का आकार एक या दो किलो मीटर होता है तथा इससे पांच किलोमीटर तक का गड्ढा (क्रेटर) बनता है। पृथ्वी, शुक्र, चन्द्रमा, बुध तथा मंगल के धरातल से ये गड्ढे देखे जा सकते हैं। क्षुद्र ग्रह पट्टिका से पृथक हुए ये पिंड 'अपोलो' क्षुद्रग्रह कहलाते है। इनकी कक्षा अन्य क्षुद्र-ग्रहो की कक्षाओं से अत्यंत भिन्न होती है। बड़ी संख्या में इन पिंडों की पृथ्वी से टकराहट दो करोड़ वर्षों मे एक वार होती है लेकिन पृथ्वी के अरवों

वर्षों की तुलना में इस टकराहट का महत्व बढ़ जाता है। उल्कापिंडों की सर्वाधिक नूतन टकराहट पच्चीस से पचास हजार वर्ष पूर्व हुई। पृथ्वी पर 'एरीजेना' का गड्ढा इसी समय बना था। इस गड्ढे का व्यास एक किलो मीटर तथा गहराई दो सौ मीटर है।

आपको आश्चर्य होगा यह जानकर कि डाइनोसॉर की विलुप्ति संभवत क्षुद्र-ग्रह के पृथ्वी पर गिरने से हुई। यह क्षुद्र ग्रह 6.5 करोड़ वर्ष पूर्व गिरा था। इसका व्यास करीब दस कि. मी. का होगा। इससे न केवल डाइनोसॉर की बल्कि 'टर्शरी-क्रिटेशस' काल के साठ प्रतिशत प्राणियों की मृत्यु हो गई। उस समय हमारी पृथ्वी भय से सिहर उठी थी जब 1937 में क्षुद्रग्रह 'हर्मीज' इसके निकट से गुजरा।



क्षुद्र ग्रह आकाश मे बिंदू के समान दिखाई पड़ते है अत: इन्हें देखने के लिये दूरदर्शी की आवश्यकता पड़ती है। 'स्मिट वाइड फील्ड दूरदर्शी' द्वारा इनका विस्तृत अध्ययन किया गया है। इन क्षुद्र ग्रहों की प्रचुरता क्षुद्रग्रह पट्टिका के भीतरी क्षेत्र मे अत्यधिक है। यानि यह प्रचुरता 2 ए-यू (एस्ट्रानॉमिकल यूनिट) से 3.3 ए-यू के मध्य अधिक है। शुद्र ग्रह पट्टिका मे कुछ क्षेत्र ऐसे है जहां क्षुद्र ग्रह नगण्य है। उदाहरण के लिये क्षुद्रग्रहों की संख्या 2.50, 2.82, 2.96, 3 28 एस्ट्रा नॉमिकल यूनिट पर नही के बराबर है। इस खाली स्थानो को 'किर्कवुड वेकेन्सीज' कहा जाता है। क्षुद्र ग्रह पट्टिका का बाह्य क्षेत्र भी लगभग रिक्त है (3.3. ए. यू. से 5.2 ए-यू-तक)। लेकिन कुछ क्षेत्रों में क्षुद्र ग्रहो की घनता है 'हिल्डा' समूह 3.9 ए. यू, दूर, 'पुल' क्षुद्र ग्रह 4.3

ए.यू. तथा 'ट्रोजन' क्षुद्र ग्रह 5.2 ए.यू.दूर अवस्थित है यानि ट्रोजन क्षुद्र ग्रह वृहस्पति की कक्षा में पहुंच गया है।

हाल ही में 'चिरोन' नामक क्षुद्र ग्रह की खोज हुई है। यह क्षुद्र ग्रह यूरेनस तथा शनि की कक्षाओं के बीच अवस्थित है। इसकी खोज सन् 1977 में हुई।

पहले यह समझा जाता था कि क्षुद्र ग्रह की उत्पत्ति किसी ग्रह के विघटन से हुई है। क्योंकि क्षुद्र ग्रह उसी स्थान पर पाये गये हैं जहां किसी ग्रह को होना चाहिये। इस परिकल्पना को [illegible] क्योंकि क्षुद्र ग्रहों की सम्पूर्ण संहति किसी भी ग्रह के लिये आवश्यक संहति से बहुत कम है। लेकिन सर्वमान्य परिकल्पना के अनुसार क्षुद्र ग्रह का [illegible] किसी कारण वश ग्रह नही बन सका। इनकी उत्पत्ति [illegible] मिलती जुलती है। ग्रहों की उत्पत्ति के [illegible] धुलिकण और बादलों से बना है। [illegible] से इनका संघनन हुआ। इसमें से [illegible] 'प्लेनेटिसिमल्स' कहा जाता है। इन 'प्लेनेटिसिमल्स' [illegible] पिंड बने। इसका आकार अन्तरिक्षीय [illegible] की मात्रा पर निर्भर करता था। ये पिंड क्षुद्र ग्रह [illegible] के अनुसार प्लेनेटिसिमल्स वृहस्पति की [illegible] किसी कारणवश भावी वृहस्पति की [illegible] भावी वृहस्पति की कक्षा से [illegible] बन गये जहां क्षुद्र ग्रहों का जन्म हुआ।

आपको यह जानकर [illegible] हैं। क्षुद्रग्रह 'पलास' का [illegible] खोज हुई है। यह पलास के [illegible] कि.मी. दूर है। 'पलास' 580 कि.मी. व्यास का है। [illegible] इसके छोटे चन्द्रमा को [illegible] करता है।

अंतरिक्ष-जैविकी

आज से ठीक सौ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध फ्रांसिसी भविष्य-वेत्ता 'ज्यूल वर्न' ने यह घोषणा की थी कि मनुष्य एक दिन अवश्य चन्द्रमा के धरातल पर कदम रखेगा। उसका वह स्वप्न साकार हुआ। 16 जुलाई 1969 को नील आर्मस्ट्रांग ने अपना पहला कदम चन्द्रमा के धरातल पर रखा। यह सफलता उसे इतनी आसानी से प्राप्त नहीं हुई बल्कि यह समस्त मानव जाति के अन्तरिक्ष-विज्ञान की दिशा में किये गये प्रयासों का परिणाम था।

रॉकेट में यात्रा करते समय मनुष्य को केवल **'जैविक-भौतिकी'** (Biophysics) समस्या का ही सामना नहीं करना पड़ता है बल्कि मनोवैज्ञानिक समस्या का भी सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं का अध्ययन **'अन्तरिक्ष-जैविकी'** में किया जाता है।

अन्तरिक्ष यात्री को निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ता है (1) वायुमंडल एवं वायुदाब (2) गुरुत्व-त्वरण (3) भारहीनता (4) भोजन (5) विकिरण।

(1) वायुमंडल एवं वायुदाब सम्बन्धी समस्या—

हमारे सौर-मंडल में पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह है जिसका गुरुत्वाकर्षण इतना अधिक है कि यहां वायुमंडल निहित है। बुध पर वायुमंडल नगण्य है, शुक्र पर 'तेल युवत' बादल पाये जाते हैं, मंगल का वायुमंडल पतला है, बृहस्पति एवं शनि में हाइड्रोजन का बाहुल्य होने से आक्सीजन स्वतंत्र अवस्था में नहीं पायी जाती। यूरेनस, नेपच्यून, प्लूटो अत्यन्त ठंडे ग्रह हैं, अतः जटिल जीवन केवल पृथ्वी पर ही विद्यमान है। यहां C–N–O–H–P चक्र चलते रहते हैं। मनुष्य केवल इसी प्रकार के 'संतुलित' वातावरण में जीवित रह सकता है। इसी प्रकार का 'संतुलित' वातावरण रॉकेट में होना भी आवश्यक है जिसे कृत्रिम रूप से पैदा किया जाता है।

इसके अतिरिक्त जैसे-जैसे अन्तरिक्ष यात्री ऊपर जाता है, वायुदाब कम होता जाता है (ब्लेज पास्कल का नियम) तथा ऑक्सीजन की मात्रा कम होती

जाती है। समुद्री-सतह से 10,000 फीट की ऊँचाई तक मनुष्य को **'ऑक्सीजन मास्क'** की आवश्यकता नहीं होती। 10,000 से 40,000 फीट की ऊँचाई के लिये **'ऑक्सीजन मास्क'** का उपयोग किया जाता है। 42,000 फीट की ऊँचाई पर **'दाब-युक्त'** (Pressurised) मास्क का उपयोग करना आवश्यक हो जाता है। 49,000 फीट की ऊँचाई पर फेफड़े कृत्रिम ऑक्सीजन-मास्क से ऑक्सीजन खींचना बन्द कर देते हैं। 62,000 फीट पर वायुदाब इतना कम हो जाता है कि रक्त उबलने लगता है। इस समस्या का समाधान **'बंद केबिन'** में **'कृत्रिम-वातावरण'** उत्पन्न करके किया गया। आपको याद होगा कि जब **'सोयुज-11'** के अन्तरिक्ष यात्री पातसायेव, डोब्रो वोल्सी एवं व्लादिस्लोव विभिन्न प्रयोग करके पुनः लौट रहे थे तो उनके केबिन में छिद्र हो जाने से केबिन का वायुदाब बहुत कम हो गया। इससे उनके शरीर का रक्त उबलने लगा तथा उनकी मृत्यु हो गई। अत: केबिन को वायुरोधक बनाना अत्यन्त आवश्यक है।

'केप्सूल' में किस प्रकार कृत्रिम वातावरण बनाये रखा जाय, यह भी एक गंभीर समस्या है। हम श्वास द्वारा कार्बन-डाई-ऑक्साइड छोड़ते हैं लेकिन **'बन्द-केबिन'** में वायु शुद्ध करने का कोई प्रावधान नहीं होता। अन्तरिक्ष यात्री के CO_2 (कार्बन डाई आक्साइड) छोड़ने से **'कृत्रिम वायुमंडल'** में CO_2 की प्रतिशतता बढ़ती जायेगी तथा O_2 (आक्सीजन) की मात्रा होती जावेगी। CO_2 की प्रतिशतता बढने से सिर-दर्द, न्यूसिआ तथा कै हो जाती है, यहा तक कि **'एस्फिक्सिएशन'** (Asphyxiation) यानि ऑक्सीजन की कमी से मृत्यु तक हो सकती है। **रोजन-ब्लेट'** के अनुसार मानव-शरीर एक दिन में 950 ग्राम CO_2 छोड़ता है। O_2 की कमी का तुरन्त असर मस्तिष्क पर होता है। शारीरिक तथा मानसिक क्षमता को बनाये रखने के लिये O_2 की पर्याप्त मात्रा नितान्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त केबिन में **'आपेक्षिक-आर्द्रता'** की भी गम्भीर समस्या पैदा हो जाती है। मानव-शरीर जल ग्रहण करने की अपेक्षा अधिक मात्रा में जल छोडता है। एक अन्तरिक्ष यात्री जो कि दो लीटर जल प्रतिदिन पीता है, शरीर से दो लीटर के अतिरिक्त 350 ग्राम अधिक जल वाष्पित करता है। आधा लीटर जल वृक्क उत्सर्जित करते हैं, 1/4 लीटर फेफड़े निष्कापित करते हैं। इस प्रकार कुछ ही दिनो केबिन एक **'स्वीमिंग पुल'** का कार्य करने लगता है। हिचकाक के अनुसार केबिन की आपेक्षिक आर्द्रता 40% से अधिक नहीं होती, अतः अन्तरिक्ष में केवल कृत्रिम वातावरण उत्पन्न करने की ही समस्या नहीं बल्कि कृत्रिम वातावरण बनाये रखने की भी गम्भीर समस्या उत्पन्न होती है।

(2) गुरुत्व-त्वरण की समस्या—

पृथ्वी का गुरुत्वाकर्पण-बल पार करने के लिये रॉकेट को लगभग 7 मील प्रति सैकण्ड का **'पलायन वेग'** देना पड़ता है। इस वेग को प्राप्त करने के लिये रॉकेट में **'त्वरण बल'** लगाया जाता है, इसका सामना अन्तरिक्ष यात्री को भी करना पड़ता है। रॉकेट के पुनः लौटने पर 'त्वरण ह्रास' की समस्या उत्पन्न होती है। जब रॉकेट छोड़ा जाता है तो बूस्टर रॉकेट द्वारा 8g- 10g का त्वरण बल लगाया जाता है। इस त्वरण पर रक्त लोहे की तरह भारी हो जाता है। उस समय तुम्हे ऐसा महसूस होगा जैसे तुम पर दस व्यक्ति और सुला दिये हों। यदि अन्तरिक्ष यात्री लिटाया नही गया हो तो मस्तिष्क एवं हाथो का समस्त रक्त पांवो मे आ जावेगा और परिवहन में बाधा उत्पन्न होगी। व्यक्ति को लेटाने से उस पर गुरुत्व-बल **उर्ध्वाधर** अथवा अनुप्रस्थ दिशा मे लगता है जिसे सहन करना आसान होता है।

जब गुरुत्व त्वरण 4g के बराबर पहुचेगा तो अंतरिक्ष-यात्री सिर तथा पांव नही हिला सकता। 6g पर श्वास लेने मे कठिनाई होगी। इस अवस्था में गैसो का आदान-प्रदान असंतुलित हो जायेगा। 8g पर ऑक्सीजन की मात्रा 70% रह जाती है जो एक खतरनाक स्थिति है। इस स्थिति मे हृदय भी रक्त को मस्तिष्क में पम्प नही कर पाता है, अतः व्यक्ति बेहोश हो जाता है। 9g पर रेटिनल धमनी मे रक्त जाना बन्द हो जाता है। फेफड़े O_2 ग्रहण करना बन्द कर देते है। रॉकेट के पुनः पृथ्वी में प्रवेश करते समय वेगह्रास 14g तक रह जाता है जो कि अत्यधिक खतरनाक स्थिति है।

(3) भारहीनता की समस्या—

अंतरिक्ष मे जाते समय व्यक्ति को भारहीनता की समस्या का भी सामना करना पड़ता है। इसका अनुभव पायलॉट सुपर-सोनिक जेट के अचानक नीचे उतरते हुए कुछ सैकण्ड के लिये करता है, लेकिन अंतरिक्ष यात्रा मे मनुष्य को इसका अनुभव काफी समय तक होता है। भारहीनता की अवस्था में यदि पायलॉट ने इन्स्ट्रूमेंट पेनेल की इलेक्ट्रोनिक ट्यूब अथवा नट-बोल्ट को घुमाने की कोशिश की तो उसका समस्त शरीर घूम जाता है। इस अवस्था में भूख मे कमी, इन्सोम्निआ (नींद में कमी), थकान, बेचैनी, दिवा स्वप्न (Day-Dreaming), g-(गुरुत्व-त्वरण) सहनता मे कमी, मूत्राशय खाली करने में कठिनता, मूत्र का अधिक बहना, ताकत मे कमी, मास पेशियो की समन्वयता (Coordination in muscles) मे कमी, शरीर के संतुलित अवस्था में बने रहने मे कमी तथा भोजन को ग्रहण करने मे व्यवधान आदि कठिनाइया उत्पन्न होती हैं।

भारहीनता की अवस्था में अंतरिक्ष यात्रियों को यह पता नही चलता है कि जमीन कहा है। क्या वे उल्टे तैर रहे हैं ? (In upside down position), आगे की ओर तैर रहे है अथवा पीछे की ओर ? इस प्रकार अंतरिक्ष-यात्री को अपनी स्थिति का बोध नहीं होता क्योकि श्रवण-कोप कणिकाएं 'ओटोलिथ' (Space-Locating receptors) जो कि भीतरी कर्ण के 'वेस्टिब्यूलर एपरेटस' में पाया जाता है, भारहीनता की अवस्था मे संवेदनशील नही होता है।

अंतरिक्ष-यात्री कूपर ने भारहीनता का अनुभव सुनाते हुए कहा कि "मैं वैज्ञानिक कार्पेन्टर से सहमत हू कि 'कोकपिट' तथा 'स्टोरेज' किट जो कि तुम्हारे दायी तरफ है, तुम्हें भिन्न कोण पर दिखायी देंगे। मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे उल्टा तैर रहा हूं। मुझे सब कुछ अजीब सा लग रहा है।"

लेकिन भारहीनता का अनुभव होने के बाद व्यक्ति इसका अभ्यस्त हो सकता है।

(4) भोजन की समस्या—

अंतरिक्ष में भोजन ले जाने की समस्या का प्रमुख कारण है—'भार। एक पौंड वस्तु ले जाने के लिए रॉकेट को कई सौ पौंड ईंधन की आवश्यकता होती है। मंगल का एक चक्कर लगाने में 516 दिन लगते हैं तथा एक व्यक्ति को 5 पौंड जल तथा 2-3 पौंड भोजन प्रतिदिन के हिसाब से कुल 4000 पौंड भोजन की आवश्यकता मंगल ग्रह के एक चक्कर के लिये होगी। इससे आप अनुमान लगा सकते हैं मंगल की एक ट्रिप के लिये कितने अधिक ईंधन की आवश्यकता होगी। इतने अधिक भोजन को सान्द्रीकरण किये बिना तथा अपशिष्ट पदार्थो 'पुनश्चक्र' (Recycling of wastage) प्रणाली अपनाये बिना ले जाना, अंतरिक्ष मे एक 'सुपर मार्केट' ब्लास्ट करने के बराबर होगा। और मान लीजिये अंतरिक्ष-यात्री वृहस्पति या इससे भी दूर के ग्रह की यात्रा करता है तो उसका काम भोजन ले जाने से नही चलेगा बल्कि अंतरिक्ष में भोजन उगाने से होगा जो कि एक कठिन समस्या है। इसके अतिरिक्त अधिक संचित भोजन किस प्रकार का होना चाहिये तथा कैसा होना चाहिये। इन समस्याओं का निराकरण भी आवश्यक है। भोजन इतना तो स्वादिष्ट होना ही चाहिये कि पचाया जा सके। भोजन को टूथ-पेस्ट जैसी ट्यूब मे रखा जाता है। इसका लाभ यह होता है कि इसे मुह में आसानी से खीचा जा सकता है जबकि व्यक्ति भारहीनता की अवस्था में होता है।

अंतरिक्ष में भोजन किस प्रकार का उगाया जाय तथा अपशिष्ट पदार्थों को किस प्रकार पुन. उपयोग मे लाया जाय, यह एक जटिल समस्या है। इस

समस्या के हल के लिये शैवाल उपयुक्त है, क्योंकि इससे अन्य पौधों की अपेक्षा अधिक O_2 निकलती है। ये पौधे प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन कर सकते है। उदाहरण के लिये शैवाल की एक किस्म **'यलोस्टोन गेस्यर पूल'** मे 185°C पर भी उगती है। शैवाल की जरूरतें भी कम होती हैं। कुछ अकार्बनिक तत्व, जल, CO_2 तथा नाइट्रोजन उत्पाद तत्वों से काम चल जाता है। इसकी अपेक्षा 50% अधिन प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज तथा विटामिन की मात्रा प्राप्त होती है। इसके लिये **'क्लोरेला'** सबसे उपयुक्त शैवाल है। डॉ० बोमेन के अनुमार इसे स्वादिष्ट तथा खाने योग्य पदार्थों मे परिवर्तित किया जा सकता है। लेकिन इसका हरा रंग हटाना कठिन है। 'क्लोरेला' पर अभी अनुसधान चल रहे है। चन्द्रमा पर भोजन उगाने की सलाह **'रिपब्लिक एविएशन वैज्ञानिकों'** ने दी है। पृथ्वी से केवल हल्के बीज ले जाने होगे और तब चन्द्र अड्डे (Lunar port) से लम्बी यात्रा के लिये प्रस्थान करना होगा। इस पर विचार किया जा रहा है कि किस प्रकार चन्द्र-पौधों (Lunar plants) की विकिरणों तथा उल्कापातो से रक्षा की जावेगी। कृत्रिम उपग्रहों मे भी भोजन उगाने के कई प्रयोग किये गये।

अपशिष्ट पदार्थों का पुन: उपयोग खाद्य शृंखला को काफी हद तक हल कर सकता है। क्लार्क ने यह कहा है कि अपशिष्ट पदार्थों के पुन.चक्र (Recycling of waste) से 3000 पौंड प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष भोजन का भार बचाया जा सकता है। मूत्र का ठोस भाग शैवाल के लिये **'नाइट्रोजन स्थरीकरण'** का कार्य करता है। **'द्रवित मूत्र'** से पीने योग्य जल भी प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिये अवशोषन, निस्पदन (Filteration) आयन एक्सचेन्ज, हिमीकरण, इलेक्ट्रो-डायालिसिस, शीतलन, आसवन आदि प्रणालियो को काम मे लाया जाता है।

महीनो एवं वर्षों लम्बी यात्रा के लिये व्यक्ति को **'सस्पेंडेड एनीमेशन'** (Suspended Animation) की अवस्था में रखा जायेगा। सस्पेंडेड एनीमेशन से तात्पर्य प्राणियो के हिमीकरण से है। किन्तु मनुष्य को सुषुप्तावस्था मे तभी लाया जा सकता है जबकि मनुष्य के शरीर से रक्त कणो को निकाल दिया जाय और इन रक्त कणो की जगह पर **'संश्लिष्ट'** रक्त का शरीर मे समावेश करा दिया जावे। इस संश्लिष्ट रक्त का निर्माण कृत्रिम रूप से नमक के घोल ग्लूकोज और अन्य आवश्यक रासायनिक तत्वों से किया जाता है। अभी हाल ही मे वैज्ञानिक को एक हिमायन रोधी रसायन **'डीमियाइल सल्फो-आक्साइड'** का पता चला है जिससे जीव की **'अतिशीतलन अवस्था'** की उपलब्धि हो सकती है और मनुष्य 100 दिन इसी अवस्था मे रह सकता है। यदि

हमने मनुष्य को सुषुप्तावस्था में ला दिया तो हम इस सौर-मंडल को पार कर दूमरे सौर मंडल मे पहुँच सकते हैं। इससे अनेक मनोवैज्ञानिक दुविधाओं का भी निवारण हो जायेगा। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये विश्व में अनेक अनुसंधान चल रहे है।

विकिरण की समस्या—

जब मनुष्य पृथ्वी के वायुमंडल को छोड़ता है तो उसे विकिरणों के घातक प्रहार का सामना करना पड़ता है। पृथ्वी से 600 मील ऊपर रेडियो एक्टिव कणो की चौड़ी पट्टी पायी जाती है जिसे 'वान एलेन' विकिरण कहते हैं। इन विकिरणों की खोज का श्रेय यू. एस. ए. द्वारा छोड़े गये एक्सप्लोरर I (जनवरी 31, 1958) को जाता है। इसके पश्चात् एक्सप्लोरर-VI, वेनगार्ड III, एक्सप्लोरर XII, आदि अंतरिक्ष यानों ने भी इन विकिरणों का पता लगाया। ये विकिरण कॉस्मिक विकिरणो से भी कई गुणा [illegible] होते है। विकिरण के शरीर पर घातक प्रहार को 'रेड' (Rad) [illegible] एक रेड (Rad) शरीर के प्रति ग्राम ऊतक द्वारा अवशोषित [illegible] के 100 अर्ग के बराबर होती है। उच्च ऊर्जा युक्त विद्युत [illegible] का शरीर पर प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव वृष्ण, [illegible] अस्थि-मज्जा में 'अंकित' किया गया है।

यदि एक व्यक्ति 24 रेड के बराबर [illegible] रक्त कणिकाओ (लिम्फोसाइट्स) में तेजी से [illegible] शरीर की प्रतिरोधक शक्ति (Resistance Power) [illegible] फेफड़े में जीवाणुओ का संक्रमण हो जाता है। [illegible] पर पाचन-क्रिया अस्तव्यस्त हो जाती है [illegible] उत्पन्न होती है। एक सप्ताह के अन्त [illegible] है तथा मनुष्य के भार में कमी आ जाती है।

कॉस्मिक विकिरणों का [illegible] (Specific) [illegible] पर होता है। ये किरणें रोम [illegible] उपयुक्त ऊतकों को जला देती हैं। [illegible] किरणों' का प्रहार किया [illegible] (मई 15, 1958) द्वारा [illegible] IV (यू. एस. एस. आर. 15 मई, [illegible]) [illegible] अध्ययन किया गया।

'पराबैंगनी [illegible] अम्ल को [illegible]

प्रोटीन का विघटन कर देती है। ये विकिरण संश्लिष्ट DNA के अणु का विघटन, त्वचा में उपस्थित फास्फोलाइपिड मे कमी, कोलेस्टेरोल के बनावट में परिवर्तन तथा लाइसोसोम को प्रभावित करते है। लाइसोसोम का सम्बन्ध मनुष्य की आयु से होता हैं। इसकी कमी से मनुष्य मे जरावस्था (Ageing) तेजी से प्रारम्भ हो जाती है। आखो की रैड कोन्स कोशिकाएं इन किरणों के प्रति अत्यधिक सवेदनशील होती है। पेरा अमीनो बेंजोइक अम्ल सौर ऊर्जा (2900—3150A°) का अवशोषन करते हैं।

'वान एलेन विकिरण' सबसे अधिक घातक होती है क्योंकि यह 'कैप्स्यूल' की मोटी दीवार मे प्रविष्ट हो जाती है और न ही केवल मनुष्य के शरीर पर बल्कि उनके भोजन तथा अन्य उपकरणो पर भी घातक प्रहार कर सकती है। अतः इस प्रकार के विकिरणों से रक्षा करना भी अन्तरिक्ष यात्री के लिये आवश्यक होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्तरिक्ष-जैविकी के अध्ययन ने मानव के अन्तरिक्ष विजय मे बहुत अधिक सहयोग दिया है। हमारा ब्रह्माण्ड अत्यन्त विशाल है। इस ब्रह्माण्ड में अनेक द्रव्य-पुज हैं। इनमें से कुछ सौरमंडलो के पुज हैं जिन्हे आकाश गगा कहते हैं। ये पिंड एक दूसरे से इतने दूर है कि इन्हें प्रकाश वर्ष तथा 'पारसेक' मे नापा जाता है। हमारी एक आकाश गंगा का चक्कर लगाने के लिये रॉकेट को 20 लाख वर्ष चाहिये यदि वह प्रकाश की गति (1 लाख 86 हजार मील प्रति सैकण्ड) से चलता हो, जबकि हमारा रॉकेट 11 मील प्रति सैकण्ड के वेग से चलता है। इन पिंडो तक पहुँचना साधारण रॉकेट के लिये आसान नहीं। अत. अब 'फोटोन' रॉकेट की बात भी सोची जाने लगी है। इसके लिये विशाल शक्ति, अन्तरिक्ष मे व्याप्त 'द्रव्य तथा प्रति-द्रव्य' के बीच टकराहट (Collision between Matter and Antimatter) से प्राप्त की जा सकेगी। ये रॉकेट 'रैम-जेट' यानों से मिलते जुलते होंगे जो कि अन्तरिक्ष मे व्याप्त 'ईंधन' का इस्तेमाल कर सकेंगे। इन रॉकेटो में किस प्रकार व्यक्ति लम्बे अर्से तक जीवित रहेगा? इसके लिये व्यक्ति को सुषुप्तावस्था में गुजारा जावेगा। एक और बात सामने आयी है कि अन्तरिक्ष में मनुष्य की 'जैविक-घड़ी' (Biological clock) बहुत धीमी हो जाती है। रॉकेट मे व्यक्ति की उम्र कम हो जाती है। यान के इन्स्ट्रूमेंट पेनेल के हिसाब से व्यक्ति जब 20 वर्ष की यात्रा करके लौटता है तब तक पृथ्वी लगभग 270 वर्ष पुरानी हो चुकी होती है और इतने समय मे व्यक्ति लगभग 137 प्रकाश वर्ष दूर नक्षत्र की यात्रा करके लौटता है। एक व्यक्ति जो कि रॉकेट की घड़ी के अनुसार साठ वर्ष की यात्रा करके पृथ्वी पर लौटता

है। उस समय तक पृथ्वी पर पचास लाख वर्ष बीत चुके होते है और वह व्यक्ति तब तक हमारे नजदीक की आकाश गंगा **'एन्डोमीडा नेब्यूला'** से भी 2,50,000 मील दूर की यात्रा कर चुका होता है। रॉकेट को अन्तरिक्ष में एक **g** का त्वरण देने पर एक वर्ष मे उसकी गति प्रकाश की गति के 99% प्रतिशत के बराबर पहुंच जायगी लेकिन मनुष्य पर त्वरण एक g ही लगेगा जिसे वह सहन कर सकेगा। लेकिन इसके पश्चात् तेजी से त्वरण-ह्रास होता है और वह लगभग शून्य के बराबर पहुंच जाता है जिसे गणितज्ञ अपनी भाषा में एक्सपोनेन्शियल शून्य (Exponential Zeto) कहते हैं और इस समय अन्तरिक्ष यात्री पर विचित्र प्रभाव पड़ता है जिसका कि उसे स्वय को पता नही चलता है। केबिन में उसे समय साधारण ही महसूस होता है क्योंकि इन्स्ट्रूमेंट पेनेल की घड़ी के साथ-साथ ही उसकी **'जैविक-घड़ी'** (Biological Clock) भी धीमी हो जाती है। लेकिन इस प्रकार की विचित्र अनुभूति उस समय होती है जबकि वह सुदूर नक्षत्र की यात्रा करके पुनः पृथ्वी पर लौटता है और तब तक पृथ्वी की कई सभ्यताएं एवं पीढ़ियां (Civilization and generations) गुजर चुकी होती हैं।

□□

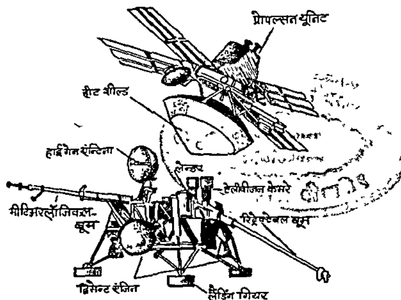
मंगल ग्रह

लाल ग्रह के नाम से लोकप्रिय मंगल वैज्ञानिक, सामान्य जन के साथ-साथ विज्ञान-कथाकारों के लिये भी अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। विज्ञान-कथाकार रॉय ब्रेडबरी ने इसे दूसरी पृथ्वी के रूप मे देखा, जिसे वहा बसी पृथ्वी वासियो की कॉलोनी ने इसे पृथ्वी के रूप में ढाला। लाल चट्टान की पृष्ठभूमि के विरुद्ध मंगल एक मनोहारी दृश्य उत्पन्न करता था। मंगल से उतरा रोबर्ट हेनलेन का दूत पृथ्वी पर अजनबी था। वह इतना अधिक सभ्य तथा स्नेही था कि उसे सदेही पृथ्वी वासियों ने मार डाला। एच. जी. वेल्स के मार्शियन (मंगलवासी) निष्ठुर लुटेरे थे, जिन्होने पृथ्वी के नगरों तथा मानवो को अपनी उन्नत तकनीक से आतंकित किया तथा जलाया।

विज्ञान-कथाकारो की तरह वैज्ञानिक भी लाल ग्रह के प्रति उदासीन नही रहे। 1877 मे विज्ञानी जिओवान्नी शियापेरेल्ली ने मगल की 'नारंगी' *सतह पर लम्बी तथा सीधी रेखाओं को सर्वप्रथम देखा।* उसने उन्हे 'केनाली' कहा लेकिन अमरीकन खगोलविद् पर्सिवल लावेल ने इसे 'केनाल' कहा यानि नहरें जो कृत्रिम रूप मे बनाई हो सकती थी। लावेल ने ही प्लूटो की सफल खोज के लिये अभियान चलाया था। लावेल ने विस्तृत नक्शे भी उन सिंचाई योग्य नहरों के खींचे। मेरिनर-9 ने उस विचार को धक्का पहुँचाया लेकिन विज्ञानियो ने आशा नही त्यागी। विज्ञानियो ने 'वाइकिंग' अभियान मंगल पर जीवन की खोज के लिये चलाया। लेकिन निश्चय पूर्वक अभी भी कुछ नहीं कहा जा सकता। हां, वाइकिंग से हमें कुछ उत्साह वर्धक चिन्ह अवश्य मिले।

'वाइकिंग' मिशन 1975 मे दो एक मे मोडयूल (राकेट) के प्रक्षेपण के साथ प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक मे एक 'कक्षीय-प्रोब' था तथा दूसरा 'अवतरण (लैंडिंग) प्रोब' था। दोनों कक्षीय (आर्बिटल) प्रोब, 'वी. एल.-1' तथा 'वी एल.-2' मंगल की दीर्घवृत्तीय कक्षा मे इसके अत्यन्त निकट स्थापित किये गये थे। ये मंगल की सतह के अत्यन्त सूक्ष्म चित्र लेते। इसके अतिरिक्त इसके दोनों उपग्रह—'फोबोस' तथा 'डेइमोस' का भी अवलोकन करते। अमेरिकी खगोलविद् आसफ हाल ने मंगल के इन दोनो उपग्रहों को खोज निकाला था। यूनानी—

रोमन आख्यानों के अनुसार मंगल युद्ध का देवता है, अतः आसफ हाल ने युद्ध के देवता के अनुचरों के आधार पर मंगल के इन दोनों चन्द्रमा के नाम फोबोस तथा डाइमोस रखे। फोबस का मतलब है भय और डेइमोस का संत्रास।



अवतरण (लेंडिंग) प्रॉब 'वी. एल.-1' मंगल की मतह पर 20 जुलाई 1976 को तथा 'वी. एल.-2' 3 सितम्बर 1976 को उतरा। दोनों ही प्रॉब मंगल के उत्तर-गोलार्द्ध मे उतरे। वी.एल.-1 'क्राइसे प्लेनिशिया' में तथा वी. एल.-2 'यूरोपिया प्लेनिशिया' में उतरा।

इस अभियान से हमें आशा से अधिक नतीजे प्राप्त हुए। एक कक्षीय प्रॉब (वी. ओ.-1) तथा एक अवतरण प्रॉब (वी. एल.-2) 1980 तक कार्यरत रहे। दूसरे अवतरण प्रॉब वी. एल.-1 के 1994 तक कार्यरत रहने की आशा थी लेकिन इसने 1982 में ही संदेश भेजने बन्द कर दिये। वी. एल.-1 'थॉमस-ए-मुच मेमोरियल स्टेशन' के नाम से जाना जाता है। यह अमरीका का सफलतम ग्रहीय अभियान रहा है।

मंगल ने इतनी अधिक जिज्ञासा तथा कुतूहल क्यों जगाया ?

यह हमारा पड़ोसी ग्रह है। यह सूर्य से चौथे क्रम का तथा आन्तरिक ग्रहो का सबसे अंतिम ग्रह है। यह सूर्य की एक परिक्रमा पृथ्वी के 687 दिनों मे पूरी करता है। यानि इसका एक वर्ष पृथ्वी का करीब दुगना है। अतः हर

11,324

दो वर्ष और दो माह बाद पृथ्वी और मंगल के बीच दूरी घटती जाती है। हर पंद्रह या सत्रह वर्ष बाद इन दोनों ग्रहों के बीच दूरी कम हो जाती है। इसी न्यूनतम दूरी का लाभ उठाकर स्वचालित अंतरिक्ष यान भेजे जाते हैं।

मंगल की कक्षा काफी दीर्घवृत्तीय है। इसकी इसी विकेन्द्रता (एक्सेन्ट्रिसिटि) के कारण पर्याप्त मौसमी परिवर्तन होते हैं। ... वसंत तथा ग्रीष्म दक्षिण गोलार्द्ध में उत्तर गोलार्द्ध की अपेक्षा ... होते हैं। ग्रह के घूर्णन अक्ष का झुकाव 250 डिग्री होने से ऋतु... अन्तर गोलार्द्ध में क्रम से बदलता रहता है।

ग्रीष्म में मंगल के दक्षिण-गोलार्द्ध की सूर्य से दूरी उत्तर की ... 20 प्रतिशत कम हो जाती है, इससे ऊष्मा का प्रवेशकरण (इन्सूलेशन) ... प्रतिशत तक बढ़ जाता है तथा दक्षिण-गोलार्द्ध में ग्रीष्म में तापक्रम उत्तर ... अपेक्षा 30° सेल्सियस तक बढ़ जाता है। मंगल की सूर्य से अधिक दूरी होने ... कारण तापक्रम में परिवर्तन—133 डिग्री सेल्सियस से +17 डिग्री सेल्सि... के बीच होता है।

पृथ्वी और शुक्र की तरह मंगल पर भी वातावरण है लेकिन मंग... का वातावरण बहुत पतला है तथा इसमें कार्बन डाईआक्साईड ... 95.32 प्रतिशत, नाइट्रोजन 2.7 प्रतिशत, ऑर्गन 1.6 प्रतिशत, मोनोक्साइड .079 तथा कुछ जल वाष्प की मात्रा पाई जाती है। ... मिशन के दौरान मंगल का ऋतु-परिवर्तन दाब 30 प्रतिशत ... है। इससे ध्रुवीय टोपियों पर कार्बन डाई आक्साईड की संघनन तथा ... पातन प्रक्रियाएं प्रारम्भ होती हैं।

मंगल पर दो ध्रुवीय टोपियां होती हैं। ऋतु-परिवर्तन का सम्बन्ध ध्रुवीय टोपियों से भी होता है। इससे सर्दियों में कार्बन डाई आक्साइड ... 30 प्रतिशत मात्रा ध्रुवीय टोपियों के रूप में जम जाती है यानि कार्बन आक्साइड की जमी हुई तह 22 सेंटीमीटर मोटी होती है। इतनी ही ... ग्रीष्म में कम हो जाती है। वाइकिंग ऑर्बिटल प्रोब से यह पता चला कि ... ध्रुवीय टोपी प्रमुखतया जल की बर्फ की बनी होती है जबकि ... टोपी बाहर से जमी कार्बन डाई आक्साइड होती है। उत्तर में ... में धूलि कण पाये जाते हैं, जो भयानक बवंडर के समय ... से ... है लेकिन दक्षिण में अक्सर बवंडर आते हैं। ये धूल ... वातावरण में काफी अंधेरा कर देती है। इससे दक्षिण ...

काफी गिर जाता है। इससे विपरीत सर्दी मे दक्षिण गोलार्द्ध मे वायु मे कम धूल होती है, इससे कार्बन डाई आक्साइड की ध्रुवीय टोपी अत्यन्त साफ होती है।

मंगल ग्रह की जलवायु पच्चीस हजार वर्ष बाद पूरी तरह बदल जायेगी। तब मगल की उत्तर-ध्रुवीय टोपी पूर्णतया जमी कार्बन डाई आक्साइड की बनी होगी तथा दक्षिण-ध्रुवीय टोपी जमा जल तथा धूलि कण की बनी होगी। वाइकिंग अभियान के अनुसार तब मगल के वातावरण मे आज से दस हजार गुना अधिक जल होगा तथा जमे पानी की एक किलोमीटर मोटी तह होगी।

उत्तर गोलार्द्ध मे धूल पृथ्वी के मरुस्थलों के ड्यून के आकार मे ही उड़ती है। ये टीले अर्द्धचन्द्राकार होते हे। ये औसतन दस मीटर ऊंचे तथा तीन सौ मीटर लम्बे होते है।

मगल का भू-दृश्य, दैनिक तापक्रम में परिवर्तन तथा तेज हवाओ के कारण निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। शान्त समय मे ये हवाए छ-सात मीटर प्रति सैकिंड की गति से बहती है। लेकिन तूफान के समय भूमि के निकट यह गति दस से बीस मी. प्रति सै. तथा कुछ किलो मीटर ऊपर सौ मी. प्रति सै. के निकट हो जाती है। इससे मंगल की चट्टानों पर जमी रेत मंगल की सतह पर या उल्कापात-गड्ढों पर फैल जाती है। अत: इसका धरातल चन्द्रमा की तरह निष्क्रिय नही है बल्कि मौसम के अनुसार निरन्तर परिवर्तित होता रहता है तथा वातावरण के साथ पारस्परिक क्रिया करता रहता है।

मगल सिलिकेट चट्टानो का एक ठोस पिंड है, इसे भी क्रोड, मेन्टल तथा पर्पटी मे विभक्त किया जा सकता है। इसकी घनत्व (3 96) पृथ्वी से कम है लेकिन चन्द्रमा से अधिक है. इससे पता चलता है कि मगल पर पृथ्वी की अपेक्षाकृत कम लौह है, लेकिन चन्द्रमा से अधिक। मगल पर शक्तिशाली चुम्बकीय क्षेत्र की कमी यह दर्शाता है कि इसका क्रोड मे निकल-लौह की मात्रा अत्यन्त अल्प है। इसकी पर्पटी 50 कि.मी. मोटी तथा लिथोस्फीयर की मोटाई 150 से 200 कि.मी. के बीच है। इसके क्रोड की मोटाई 1300 से 2000 कि.मी आंकी गयी है। इसका लियोस्फीअर अधिक ठोस है।

मंगल के उत्तर और दक्षिण गोलार्द्ध मे काफी अन्तर है। दक्षिण गोलार्द्ध में क्रेटर बहुतायत मे पाये जाते है। ये उल्कापात के कारण उत्पन्न होते है। इससे यह चन्द्रधरातल-सा नजर आता है। इसके विपरीत उत्तर-

गोलार्द्ध में अपेक्षाकृत कम क्रेटर तथा अधिक सपाट मैदान हैं। इससे स्पष्ट है कि उत्तर गोलार्द्ध, दक्षिण गोलार्द्ध की अपेक्षा अधिक नवीन है मगल के धरातल पर तीन बेसिन पाये गये हैं। 'आरजिर' बेसिन का व्यास 600 कि.मी. है। इसके युग्म क्रेटर चन्द्रमा से भिन्न है। क्रेटर के चारो ओर पदार्थ का जमाव (इजेक्ष) लसीले बहाव के कारण उत्पन्न हुआ। ये क्रेटर उन्ही क्षेत्रों मे बने जहा भूमि मे 'पानी' द्रव या जमी हुई अवस्था (परजेलिसोल) मे रहा हो। और प्रमुख बात यह है कि ये क्रेटर मंगल के इतिहास मे नजानतम है। दक्षिण गोलार्द्ध की अपेक्षा उत्तर गोलार्द्ध दो तीन कि. मी. नीचा है।

मंगल पर जल

मगल का भारी क्रेटर युक्त दक्षिण गोलार्द्ध यह दर्शाता है कि यहां नहरो का बहुत बड़ा जाल फैला हुआ है। ये नहरें सैकड़ों किलो मीटर तक फैली हुई है। ये पृथ्वी की 'फ्लूवायल चइल' प्रणाली से मिलती है। ये नहरें दर्शाती है कि इनमे किसी समय 'जल' बहता था। यह जल कैसे उत्पन्न हुआ? इसके बारे मे मतभेद है। आस्टिन यूनिवर्सिटी टेक्सास के विज्ञानी विक्टर बेकर ने तीन कारण बताये। मंगल पर धीमी गति से निरन्तर बहते 'जल' के कारण नहरो की खुदाई होना तथा उनका चौडा होना जैसा कि पृथ्वी की नदियो तथा धाराओं के साथ होता है। दूसरा ग्लेशियर के पिघलने से महा-विपत्ति की तरह बाढ़ का आना। इससे अत्यधिक मात्रा में 'जल' उत्पन्न हुआ होगा। तीसरा जमे हुए पदार्थ के अचानक पिघलने के कारण 'जल' उत्पन्न हुआ होगा। यह पदार्थ भूमि के गर्म होने, ज्वालामुखी सक्रियता, उल्कापात, तथा जलवायु मे परिवर्तन, के कारण पिघला होगा।

मंगल के धरातल से जल कैसे गायब हुआ?

विज्ञानी मेक एलरोय ने मंगल की भूमि के नाइट्रोजन, आक्सीजन तथा कार्बन के समस्थानिक अनुपात के आधार पर यह दर्शाया कि भूतकाल मे मंगल गैस-रिसाव (डीगेसिंग) से प्रभावित रहा होगा अत अब केवल सम्पूर्ण मात्रा की एक प्रतिशत गैस रह गई है। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य सामने आया है कि यदि मंगल के धरातल को समान रूप से वितरित करें तो कभी मंगल धरातल पर 'जल' की 160 से 200 मीटर मोटी परत रही होगी यदि पृथ्वी पर इसी प्रकार समान रूप से जल वितरित किया जाये तो इसकी तीन किलो मीटर मोटी तह बन जायेगी। ध्रुवीय टोपियों पर कभी

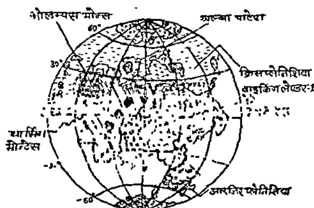
वर्तमान की अपेक्षा दस हजार गुना अधिक 'जल' जमा हुआ होगा। यदि टोपियों को ही पिघला कर समतल रूप से फैलाया जाय तो उस समय मंगल के धरातल पर 10 से 13 मीटर मोटी 'जल' की पर्त बन जाती। इससे स्पष्ट है कि किसी समय मंगल पर 'जल' की प्रचुर मात्रा रही होगी। लेकिन इस जल का क्या हुआ ? हमें यह स्वीकार करना होगा कि वर्तमान में अधिकाश पानी भूमि मे दबा होगा। इसका कुछ भाग 'हाइड्रेटेड' मिनरल (जलीय खनिज) के रूप में विद्यमान होगा तथा कुछ भाग जमा अन्तराली-जल (इन्टरस्टिशियल) के रूप में धरातल से नीचे कुछ गहराई पर होगा यह जल परजेलिमोल या 'हाइड्रोलियोस्फीअर' में होगा। दोनों वाइकिंग लेंडर्स के द्वारा मंगल की भूमि पर किये गये प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकला।

विज्ञानियों ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि मंगल की जमीन के नीचे भी जल की 'बर्फ' विद्यमान है। मंगल के कुछ भागों मे विशाल गड्ढों (आदि-गर्त) के समूह है। आदिकाल में जमीन के भीतर विद्यमान बर्फ पिघला और जमीन ढ़ही। इससे ये विशालकाय आदि-गर्त बने। भूमि की दरारो (फाल्ट्स) से जुडे अनेक वृतीय खड्ड भी इसके धंसने से बने। यह क्रिया 'ऑरजेलिसॉल' के गर्म होने से गैस रिसाव के कारण हुई। मंगल के धरातल पर बहुभुजी दरारों का जाल भी भूमि के भीतरी बर्फ की अवस्था मे परिवर्तन से उत्पन्न जमीन के संकुचन के कारण फैला। इसी प्रकार से मगल की घाटियो, विशेष तौर से **'वेलेस मेरिनेरिस'** के कैनियन पर कटाव तथा संचय उष्णकाल में पजेलिमोल के पिघलने तथा भूमि के द्रवित होने से उत्पन्न हुए।

इससे पता चलता है कि भूतकाल मे मंगल के धरातल के भीतर **'जल'** की प्रचुर मात्रा रही होगी। भूमध्यवर्ती कैनयन **'वेलेस मेरिनेरिस'** पूर्व में मैदानी भूभाग मे एक दस-ग्यारह कि. मी. ऊचे स्थल, **'थार्सिस-डोम'** पर अवस्थित है। **'थार्सिस डोम'** एक विशाल ऊचा स्थल है जो करीब छ: हजार व्यास में फैला हुआ है। मंगल के भूगर्भीय ज्ञान के हिसाब से यह क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मगल के **'थार्सिस'** तथा 'इलिशियम्' दोनो क्षेत्रों मे ज्वालामुखियों की संख्या बहुत अधिक है। ये ज्वालामुखी काफी विशाल तथा अत्यधिक चपटे शंकु युक्त है। थार्सिस डोम के उत्तर-पश्चिम से 1600 कि. मी. दूर स्थित ओलम्पस मोन्स ज्वालामुखी का व्यास 550 कि. मी. है। इनकी ऊंचाई 24 से 27 कि. मी. के मध्य है तथा इनकी चोटिया विशाल ज्वालामुखी-कुण्ड (कैल्डरा) युक्त है। इनका व्यास करीब 120 से 220 कि. मी के मध्य

होगा तथा ये कुण्ड तीन से चार कि. मी. के बीच गहरे हैं। ये ज्वालामुखी अत्यन्त प्राचीन है। कुछ छोटे ज्वालामुखी भी पाये गये है। इनका व्यास 60 कि. मी. से 180 कि. मी. व्यास तक है। लेकिन इनकी ढलान अत्यन्त खडी है (9° तक) इस ग्रह पर ज्वालामुखी सक्रियता भी लम्बे समय तक बनी रही। प्राचीनतम ज्वालामुखी इसके दक्षिण भूभाग पर पाया गया है। 'थार्सिस' क्षेत्र के ज्वालामुखी अपेक्षाकृत नवीन है।





'थार्सिस डोम' की दरारें इसके केन्द्र से परिधि की ओर चार हजार कि. मी. तक फैली हुई तथा त्रिज्यीय हैं। इनका सम्बन्ध पर्पटी के विकृत होने तथा थार्सिस डोम के निर्माण से है। इसके अतिरिक्त वहां कुछ कटक पाये गये हैं। इनका सम्बन्ध 'हाइड्रोलिथोस्फीअर' से है, धरातल का वह भीतरी भूभाग (एक से 8 कि. मी. तक गहरा) जहां जल का गहरा स्तर हो

सकता है। यह जल ऊपरी हाइड्रोलिथोस्फीअर में बर्फ के रूप मे अवस्थित है तथा निचले भाग मे द्रव के रूप में हो सकता है।

अ	हिमनदीय टोपी
	वायूढ निक्षेप
+ + +	अपरदन निक्षेप
	ज्वालामुखी
	अभिनव ज्वालामुखीय मैदान
०००	प्राचीन ज्वालामुखीय मैदान
	खड्डयुक्त ज्वालामुखीय मैदान
	अव्यवस्थित भूभाग
	अंशतः अपरदित भूआकृति
रर	अभिनव मैदानों में पृथक भूआकृति
2 2 2 2	नहर की तलहटी में निक्षेप
	कम खड्डयुक्त अभिनव मैदान
	ओलम्पस मोन्स का परिधीय निर्माण
सस	अधिक खड्डयुक्त (क्रेटेड) भूभाग
चं-च	विशाल बेसिनों की परिधी पर पर्वतीय भूभाग

पृथ्वी की अपेक्षा यहां विवर्तनिक (टेक्टॉनिक) गतिविधिया बहुत कम पाई गई है।

वाइकिंग लेन्डर्स ने मंगल के भू-दृश्य (लेडस्केप) तथा भूमि के नमूनो का अध्ययन किया है। वाइकिंग मंगल के उत्तर गोलार्द्ध में उतरा था। उत्तर

गोलार्द्ध मे 'काइसे' तथा 'यूटोपिया' प्लेनिशिया के मैदान पृथ्वी के मरुस्थलों के समान है। मंगल की जमीन एक गहरे गैरिक रंग वाले पदार्थ (10 से 100 माइक्रोन) तथा रेत से ढकी हुई है (1 से 2 मि. मी.)। इसकी चट्टानों का आकार 10 से. मी. से 1 मीटर के बीच पाया गया है। चट्टानों के कई टुकड़े कोणीय तथा तीखे किनार वाले हैं। 'यूटोपिया प्लेनिशिया' पर ये टुकड़े उल्का-पिंडों के प्रहार से बने थे। इनकी मतहों पर कई स्फोट-गर्त (वेसिकल्स) पाई गई है।

वाईकिंग लैंडर रिट्रोजेट के धमाके से कठोर चट्टानी मतह उघड आई। यह सतह 16.5 से. मी. की गहराई तक उघड़ी क्योंकि मंगल की सतह मे लैंडर की टाग इसी गहराई तक धंसी थी।

इसकी भूमि के नमूने का वाईकिंग द्वारा अध्ययन किया गया। मंगल की जमीन मे 'मैंगनेशियम सल्फेट' तथा 'नमक' पाया गया है। मंगल की चट्टानो मैंगनेशियम, लौह तथा केल्शियम की प्रचुरता है लेकिन पोटेशियम, सिलिकोन तथा एल्यूमीनियम की मात्रा अल्प होती है। मंगल की भूमि में चुम्बकीय पदार्थों का बाहुल्य है। वहा आयरन-आक्साइड, मेग्नेटाइट तथा मेग्नेटाइट हो सकता है। मंगल की भूमि का गेरु रंग 'ग्रेटाइट' के कारण है जो कि लाल-पीले रग का है। इसकी मृदा में 'स्मेक्टाइट' की तरह का लौह विद्यमान है तथा अल्प मात्रा मे सल्फेट, कार्बोनेट तथा आक्साइड यौगिक है। इस प्रकार के संगठन का सम्बन्ध जल द्वारा ज्वालामुखी चट्टानों मे हुए परि-वर्तन से हैं। इस प्रकार मृदा के संगठन से इस सिद्धान्त को बल मिलता है कि मंगल पर जल की तथा ज्वालामुखी चट्टानो की प्रचुरता थी।

अत. यह स्पष्ट है कि मगल में भूतकाल मे जीवन रहा होगा। यदि जल धरातल के भीतर है तो कोई आश्चर्य नही कि वहां 'जीवन' हो यद्यपि यह जीवन 'जीवाणु' स्तर का ही हो सकता है। लेकिन यह तो अगले अभि-यानो से ही स्पष्ट हो सकेगा।

मानव चाहता है कि ब्रह्माण्ड में कोई उसका साथी हो। हमारे सौर-मडल में मगल ही ऐसा ग्रह है जहा कॉलोनी बसाई जा सकती है। यही एक ऐसा स्थान है जहां का वातावरण विषाक्त नही है। तापक्रम इतना है कि मानव इसे सहन कर सकता है। ग्रीष्म ऋतु मे यह तापक्रम 60° फेरनहाइट तक पहुँच जाता है। भूमि के भीतर पर्याप्त 'जल' है जिसे प्राप्त किया जा सकता है (यह सुनिश्चित करना अभी शेष है।)

अब प्रश्न यह है कि हम मंगल पर अभी तक क्यों नही जा पाये है ? जान एफ केनेडी की यह घोषणा अब तक पूरी क्यों नही हो पाई कि हम मगल पर शीघ्र पहुँचेगे ।

वास्तव मे हम मंगल पर पहुँच सकते है । हम न केवल वहां पहुंच सकते है बल्कि वहा हम स्थाई आत्मनिर्भर अड्डा भी स्थापित कर सकते है । इसे कार्यान्वित करना शेष है । केवल राजनीतिक इच्छा शक्ति का सवाल है ।

जान्सन अंतरिक्ष केन्द्र के मिशन मेनेजर बर्नी रोबर्ट के अनुसार, 1960 मे कई अंतरिक्ष-योजनाओं की श्रृंखला प्रारम्भ करने का प्रस्ताव रखा गया था । इसमे अंतरिक्ष-शटल, अंतरिक्ष-स्टेशन, चन्द्रमा पर अड्डे का निर्माण, मंगल की सैर को भी शामिल किया गया था । रिचर्ड निक्सन ने एक बार मे एक योजना को क्रियान्वित करने का फैसला किया । इसका परिणाम यह हुआ कि अब अंतरिक्ष शटल उपलब्ध है । रोनाल्ड रीगन ने यह घोषणा की थी कि 1990 तक एक स्थाई अतरिक्ष-स्टेशन स्थापित किया जा सकेगा । लेकिन इन्ही दो अलग-अलग अभियानो अंतरिक्ष शटल तथा अतरिक्ष स्टेशन का ही यह परिणाम हुआ कि मगल की यात्रा सुलभ हो सकेगी । इसका कारण यह है कि मानव सहित मगल के लिये यान कक्षा मे ही बनाना होगा । हम मंगल के लिये यान धरती से सीधा भेजने मे सक्षम नही है ।

अब प्रश्न यह है कि मंगल की सैर के लिये यान पृथ्वी की कक्षा में बनाना क्यों आवश्यक होगा ?

मंगल की सैर के लिये यान का भार लगभग बीस से चालीस लाख पौंड के बीच होगा । इतने अधिक भार के रॉकेट को पृथ्वी से छोड़ना कठिन है । इसमे गुरुत्व सबसे बडी रुकावट है । इतने भारी रॉकेट को छोड़ने के लिये लाखों पोंड ईंधन की आवश्यकता होगी । इतने ही ईंधन तथा टैंक को उठाने मे और अधिक ईंधन की आवश्यकता होगी । इससे यान को इतना अधिक शक्तिशाली होना पड़ेगा कि यह निचले वायुमण्डल के खिचाव के विरुद्ध जा सके । इसके लिये एक नई **'बूस्टर-इंजन'** तकनीक की आवश्यकता होगी जो *'सेटर्न-5'* की अपेक्षा अधिक सक्षम हो ।

अब हम कल्पना करें कि बीस से चालीस लाख पौंड के यान को टुकड़ो मे करीब पचास शटल-उड़ान करके ले जाया जाय या कई शटल एक साथ छोड़कर यह संख्या कम की जाय तथा स्पेस-स्टेशन से इन्हें जोड़ा जाय

तो मंगल की यात्रा संभव हो सकेगी। यद्यपि इससे ईंधन अधिक खर्च होगा लेकिन यह पचास प्रक्षेपणो में फैल जायेगा। अंतरिक्ष-स्टेशन पर निर्मित मंगल यान में इस तरह के ईंधन की आवश्यकता अधिक नही होगी।

ईंधन की बचत और अधिक होगी यदि नासा प्रस्तावित **'कक्षीय स्थानान्तरण वाहन'** का निर्माण करें। यह एक अंतरिक्ष टग-नाव होगी जो भारी-भारी विशाल यानों को निर्धारित कक्षा में धकेल देने मे समर्थ होगी।

इस प्रकार अंतरिक्ष-स्टेशन पर निर्मित समामन यान मंगल के निकट ही नही पहुँचेगा बल्कि लेंडर इसके धरातल पर भी भेजेगा। लेंडर **'एरोब्रेकिंग'** की तकनीक का प्रयोग करते हुए आहिस्ता से इसके धरातल पर सुरक्षित उतरेगा। अत: यान के लिये **'एरोडाइनेमिक्स'** की आवश्यकता नही होगी। इससे ईंधन की और अधिक बचत होगी।

फिलहाल द्रवित-हाइड्रोजन तथा द्रवित ऑक्सीजन को ही रॉकेट के प्रणोदक के रूप मे इस्तेमाल करना होगा। यदि मगल के दोनो उपग्रहो **'देइ-मोस'** तथा **'फोबास'** की चट्टानो में पर्याप्त ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजन विद्यमान होगी तो भविष्य के रॉकेट लौटती यात्रा के लिये इससे ईंधन तैयार कर सकेंगे या फिर मंगल से पर्याप्त जल हमें आसवन करना होगा।

सोवियत संघ ने 1986 मे **'फोबोस'** नामक यान भेजा। यह न केवल मंगल बल्कि **'फोबोस'** तथा **'देइमोस'** का भी अध्ययन करेगा। यहा हम आपको फोबोस तथा देइमोस के बारे मे वाइकिंग से मिली जानकारी के बारे मे बताना चाहेंगे। वाइकिंग यान 1976 मे **'फोबोस'** के करीब सौ किलोमीटर नजदीक तक पहुचा है।

मंगल के ये दोनो चन्द्रमा इसके काफी निकट से परिक्रमा करते है। फोबोस मंगल से केवल 6005 कि मी. ऊंचाई पर लगभग वृत्ताकार कक्षा मे चक्कर लगा रहा है। यह मंगल की एक परिक्रमा, केवल 7 घटे 40 मिनट मे कर लेता है। फोबोस की लम्बाई 27 कि.मी और चौड़ाई 21 कि.मी. है। इसके द्रव्य का घनत्व लगभग 2 ग्राम प्रति घन सेंटी मीटर है। इससे पता चला कि मंगल के उपग्रह भीतर से खोखले नही है।

'देइमोस' की लम्बाई 14 कि.मी. और चौड़ाई 12 कि. मी. है। यह मंगल से 23,500 कि.मी. दूर है। यह मंगल का एक चक्कर 30 घटे और 18 मिनट में लगाता है। पृथ्वी की चन्द्रमा की तरह मंगल के इन चन्द्रमाओ

का भी हमें एक ही तरफ का चेहरा दिखता है। आश्चर्य यह है कि फोबोस 'कार्बन कोंड्राइट' से बना है। यह पदार्थ कुछ विशिष्ट क्षुद्र ग्रहो तथा उल्का-पिंडो में ही पाया जाता है। बृहस्पति के निकट के क्षुद्र ग्रहों से इसका पदार्थ मेल खाता है।

'फोबोस' पर भी चन्द्रमा की तरह 'रेगोलिथ' चट्टानें पाई गई है। इससे हमें सौर मंडल के विकास क्रम के बारे मे पता चल सकेगा। फोबोस पर अनेक क्रेटर है। सबसे बड़ा क्रेटर 'स्टकनी' है। इसका व्यास 27 कि.मी. है। किसी विशाल उल्कापिंड के प्रहार से ही यह क्रेटर बना होगा। इसकी भयंकर टकराहट से फोबोस की सतह पर क्रेटर से फूटती करीब 400 मीटर चौड़ी तथा करीब 70 मीटर गहरी दरारें बन गई। कुछ विज्ञानियों का मत है कि मंगल पर पहुंचने से पूर्व फोबोस पर पहुंचना अधिक सुविधाजनक होगा।

फोबोस से द्रवित आक्सीजन तथा द्रवित आक्सीजन का उपयोग करना अत्यन्त कठिन होगा। अतः नोदन के लिये अन्य उपयुक्त पदार्थ की तलाश करनी होगी।

भविष्य छोटे में नाभकीय रिएक्टर पर आधारित राकेट होंगे। ये निष्क्रिय गैस को गर्म करेंगे। ये गैसें ठेल (थ्रस्ट) के लिये निष्कापित की जायेंगी।

'आयन-ड्राइव' पर आधारित रॉकेट गैस को विद्युत द्वारा आवेशित करेंगे। तब इन आवेशित कणों को विद्युत क्षेत्र में त्वरित किया जायेगा। इसके अतिरिक्त 'सौर-बादवान' (सोलर सेल) पर आधारित रॉकेट होंगे। इस यान के द्वारा सौर-वायु (सोलर-विंड) के मद-दाव का उपयोग किया जायेगा। यह 'पे-लोड' को अपने पीछे खींचेगा। रॉकेट के सौर-बादवान की चादर एल्यूमिनियम युक्त 'माइलर' की बनी होगी जो कई वर्ग किलो मीटर के क्षेत्र मे फैली होंगी।

इसके अतिरिक्त अंतरिक्ष-यात्रियों को भी ले जाने की समस्या उत्पन्न होगी। उन्हें लम्बे समय तक भारहीनता की अवस्था में रहना होगा। किसी यान को फोबोस तक पहुँचने मे करीब 200 दिन लग जायेंगे। अत. किसी अंतरिक्ष यात्री की पूरी यात्रा में कम से कम 400 से अधिक दिन लगेंगे। लम्बे समय तक भारहीनता की अवस्था मे रहने से पेशियां क्षीण होने लगती है तथा हड्डियों से केल्शियम निकलने लगता है। भारहीनता मे नियमित अभ्यास से इस समस्या को काफी सीमा तक सुलझाया जा सकता है। या फिर रॉकेट को

लगातार घूर्णन करना पडेगा ताकि कृत्रिम-गुरत्व उत्पन्न किया जा सके। अंतरिक्ष को सौर-वायु के आवेशित कणों से भी बचाना होगा, विशेष तौर पर सौर-प्रज्वाल की सक्रियता के समय। इसके लिये आवश्यक है कि रॉकेट की दीवार स्टील की तथा अत्यन्त मोटी हो या फिर हमे अन्य पदार्थ तलाशना होगा।

मगल की सैर के लिए प्रक्षेप-पथ (ट्रेजेक्टरी) भी सुनिश्चित नहीं है। प्रमुख तौर पर चार प्रकार के प्रक्षेप-पथ निर्धारित किये गये है। पहला पथ **'कंजक्शन क्लास मिशन'** कहलाता है। इसमें अंतरिक्ष यात्री को मगल पर उस समय उतारा जायेगा जब मंगल पृथ्वी की सीध में सूर्य के विपरीत होगा। इस पथ द्वारा मंगल पर पहुचने मे नौ माह लग जायेंगे। अंतरिक्ष यात्री को मगल पर करीब डेढ साल ठहरना होगा जब तक कि मंगल तथा पृथ्वी निकट नही आ जाते।

दूसरा पथ **'ऑपोजीशन क्लास मिशन'** है। इसमे यात्रा करने मे समय कम लगता है। इसमे तीन वर्षों के बजाय केवल डेढ वर्ष मे ही मगल की यात्रा पूर्व की जा सकती है। इसमे यात्री उस समय मंगल पर उतरता है जब पृथ्वी उसके निकट होती है। अतः वह 20 दिन से अधिक यहा नही रुक सकता।

मंगल के पथ का तीसरा विकल्प **'वीनस फ्लाई बाई'** है। इस पथ पर रॉकेट सूर्य की ओर अग्रसर होगा। यह शुक्र ग्रह के गुरुत्व का उपयोग करते हुए मंगल ग्रह पर जायेगा। लेकिन इसमें यान को सौर विकिरणों का सामना करना पडेगा।

मगल के पथ का चौथा विकल्प **''फ्री रिटर्न फ्लाई बाई'** है। इस पथ का उपयोग करने मे सबमे कम ईंधन की आवश्यकता होगी। क्योंकि यान की गति मगल के निकट आने पर धीमी नही होती है। इसका मतलब होगा मानव के मगल पर ठहरने का समय शून्य होगा। इसके साथ-साथ दो रॉकेटों की भी आवश्यकता होगी।

लेकिन ये प्रक्षेप-पथ तब तक काम में नही लिये जा सकते जब तक कि ईंधन की समस्या नही सुलझ जाती। अत: फिलहाल के लिये केवल एक ही विकल्प रह जाता है—अंतरिक्ष-स्टेशन का निर्माण। इसका निर्माण 1995 तक होने की सभावना है। अगले अध्याय मे हम इस पर विस्तृत चर्चा करेंगे।

क्या मंगल पर कॉलानी बसाई जा सकेगी ?

इसमें कोई संदेह नहीं है कि मानव मंगल पर कोलोनी बसा सकेगा। जीवन को चलाने के लिये जल, हवा, भोजन तथा शरण की आवश्यकता है। मंगल इन सब वस्तुओं को उपलब्ध करा सकता है। अब इसमें संदेह नहीं रहा है कि मंगल पर कभी पर्याप्त जल रहा होगा। यह जल इतना होगा कि इससे विशाल नदी-घाटिया बनी होगी। यहां तक कि यहां बाढ़ भी आई होगी। अब भी यहां भूमि में जल की मात्रा मे किसी प्रकार की कमी नहीं है यद्यपि यह रासायनिक सगठनो के रूप में होगा।

हमने देखा कि भूमि के अतिरिक्त यह जल ध्रुवीय-टोपियों मे पाया गया है। वायु मंडल में यह वाष्प के रूप में निचली घाटियों में जमा हो जाती है। वातावरण का यह जल आसानी से प्राप्त किया जा सकता है एक साधारण-सा वायु सम्पीडित्र (कम्प्रेसर) मंगल के विरल वायु दाब को ऊंचा उठा सकता है, तब इसे ठंडा करके जल प्राप्त किया सा सकता है।

आक्सीजन वायुमण्डलीय कार्बन डाईआक्साइड से प्राप्त की जा सकती है। विद्युत का उपयोग करके हम कार्बन डाई आक्साइड के अवयवों को पृथक कर सकते है तथा आक्सीजन प्राप्त कर सकते हैं। मंगल की भूमि लवण से भरपूर है। मंगल के जल में इन्हें पर्याप्त भिगोकर इन्हें **'ग्रीन हाऊस कृषि'** के उपयुक्त बनाया जा सकता है। यदि इनकी धुलाई अपर्याप्त हो तो इस प्रकार कि किस्मे उत्पन्न की जा सकती है जो लवण-नियंत्रक हो। खाद की समस्या का हल मानव-अपशिष्ट से किया जा सकता है। (देखिये अंतरिक्ष-जैविकी के अध्याय मे) मंगल के वायु मंडल से नाइट्रोजन प्राप्त की जा सकती है तथा जल से हाइड्रोजन।

निवास के लिये सर्व प्रथम हमे लेंडिग वाहन को ही साधन बनाना होगा। लेंडर वास्तव मे ही स्थाई निवास का एक आधार है। मंगल पर कॉलानी के विस्तार के अनेक तरीके काम मे लिये जा सकते है। मंगल की भूमि का उपयोग कर सीमेन्ट बनाई जा सकती है। फिलहाल के लिये खाली इनटरप्लेनेटरी इंधन के टेकों का उपयोग कर उनके मकान या कार्यशालाए बनाई जा सकते है। चट्टानो को बेधकर इन्हें निवास के उपयोगी बनाया जा सकता है। सबसे अधिक कारगर विकल्प है कि मंगल के वायुमडल को शनैः शनैः बदल दिया जाय। इसके कार्बन डाई आक्साइड के वातावरण को आवश्यक आक्सीजन के वातावरण में तबदील कर दिया जाय। लेकिन यह एक बहुत लम्बा उपाय है। इसमें, मंगल की अर्द्ध या एक शताब्दी लग सकती है। लेकिन एक स्थाई कॉलोनी के लिये हमे इसी प्रकार के प्रयास करने होंगे तभी हम विज्ञान कथाकारो का सपना पूरा कर पायेंगे। □□

अंतरिक्ष स्टेशन : फ्रीडम

यदि नासा की योजना सुचारु रूप से चली तो वह दिन दूर नहीं जब हम पृथ्वी की कक्षा मे अन्तरिक्ष-स्टेशन स्थापित कर पायेंगे। यह अन्तरिक्ष-स्टेशन 1995 में स्थापित किया जायेगा। एक अन्तरिक्ष शटल केप केनवरल से अन्तरिक्ष स्टेशन के निर्माण मे प्रयुक्त सामान गर्डर, सौर-पेनेल, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण आदि ले जायेगा। यह सामान पृथ्वी की निचली कक्षा में छोड दिया जायेगा जहा यह कुछ समय तक बिखरा हुआ ही तैरता रहेगा। कुछ सप्ताहों बाद एक दूसरा शटल छोड़ा जायेगा। इसके अन्तरिक्ष यात्री आकाश मे तैरते हुए अन्तरिक्ष-स्टेशन के विभिन्न टुकड़ो को जोड़ेंगे। यह अन्तरिक्ष-स्टेशन अपने आप में बेजोड़ होगा।

अन्तरिक्ष-स्टेशन के कक्षा में सफल स्थापित होने के साथ ही अन्त-ग्रेहीय यात्राओ के द्वार खुल जायेंगे। मंगल तथा अन्य ग्रहो की यात्रायें हमें सुलभ हो जायेगी।

अगले दो वर्षों तक यह प्रक्रिया कई बार दोहराई जायेगी। इससे कक्षीय-स्टेशन की जटिलता बढती जायेगी। 1998 तक करीब 20 शटल इस हेतु आकाश में सामान ले जा चुके होगे तथा उन्हे जोडा जा चुका होगा। यह अन्तरिक्ष-स्टेशन स्थायी होगा तथा 'फ्रीडम' के नाम से जाना जायेगा।

'फ्रीडम' अन्तरिक्ष-स्टेशन स्काईलैब से अत्यधिक परिष्कृत है। स्काइलैब अन्तरिक्ष यात्रियों को स्थाई निवासी के बजाय थोड़ी सी शरण दे देता था।

फ्रीडम के मध्य मे एक 508 फुट लम्बा ट्रस (प्लेट-फार्म) होगा। यह पाइप का बना हुआ होगा। ये पाइप अत्यन्त हल्के लेकिन अत्यन्त मजबूत ग्रेफाइट इपोक्सी के बने होंगे। सभी पाइप एल्यूमिनियम के जोड़ से फिट होंगे।

ट्रस (प्लेट फॉर्म) के दोनों सिरों पर ऊर्जा उत्पादक सौर-पेनेल के पंख होंगे। इन पंखों मे दो लाख पचास हजार के करीब सौर-बैटरियां होंगी। सौर-पेनेल के ये पंख चार बायी तरफ तथा चार दायी तरफ होंगे। प्रत्येक सौर-पेनेल का पंख 3600 वर्ग फीट का होगा। ये इतने विशाल हैं कि यदि सबको

होगा। यह **'मेन टेन्डेड फ्री फ्लायर'** मोड्यूल के नाम से जाना जायेगा। इसे कार्य करने के लिये स्पेस-स्टेशन की आवश्यकता नहीं होगी। लेकिन प्रत्येक छः महिने में इसे अन्तरिक्ष स्टेशन में लाना होगा। तब फ्रीडम का दल इसके द्वारा निष्पादित प्रयोगों को हटायेगा तथा प्रयोगों की दूसरी खेप इसमें डालेगा। इसके पश्चात् यह दल मोड्यूल को कक्षा में स्वतंत्र विचरने के लिये अगले छः माह के लिये छोड़ देगा। यह क्रम अगले वर्षों में भी चला रहेगा।

जापान तथा कैनेडा ने भी इस अन्तरिक्ष स्टेशन में अपना योगदान दिया है। जापान एक **'आवासीय-प्रयोगशाला'** शटल द्वारा 1997 में फ्रीडम में भेजेगा। इसका उपयोग पदार्थ की प्रोसेसिंग, संचार-प्रयोग तथा इंजीनियरिंग के अध्ययन में होगा। यह आवासीय प्रयोगशाला 33 फीट लम्बी होगी। इससे जुड़ी एक बाह्य-पिछली ड्योढी होगी। ड्योढी से बाह्य अंतरिक्ष के खुले वातावरण पर प्रयोग किये जा सकेंगे। इस डेक से विभिन्न ग्रहों तथा पृथ्वी का अवलोकन किया जा सकेगा।

कनाडा अन्तरिक्ष शटल द्वारा एक परिचालक-भुजा फ्रीडम भेजेगा। यह केवल पकड़ने तथा उठाने वाली भुजा ही नहीं होगी बल्कि यह एक **'चल रोबोट'** होगा जो उपकरणों को चलायेगा, औजारों को नियन्त्रित करेगा तथा उनकी मरम्मत करेगा। यह एक 55 फुट लम्बी कार्बन की भुजा होगी जिसके मध्य में एक जोड़ होगा। इस भुजा के अन्त में एक फन्दे के तरह का तार होगा तथा इसमें इतनी ताकत होगी कि यह 2,20,000 पोंड से अधिक भार को उठा सकेगी। यह भुजा एक सरकने वाले (स्लाईडिंग) प्लेटफोर्म से जुड़ी होगी जो इसे केन्द्रीय प्लेटफोर्म (ट्रुस) पर कहीं भी ले जा सकता है। इस स्लाईडिंग प्लेटफार्म पर एक कन्ट्रोल पेनेल तथा कार्य स्टेशन होगा जिस पर अंतरिक्ष में भ्रमण करने वाला यात्री भुजा को चला पायेगा।

ट्रुस से जुड़ा एक द्वितीय तथा छोटा परिचालक (मनिप्यूलेटर) होगा जिसमें दो छोटी भुजायें होंगी जो छः फीट लम्बी होंगी। यह उपग्रह की मरम्मत करने जैसे अत्यन्त नाजुक कार्य करेगी। यह स्लाईडिंग स्लेज पर खिसकेगी। इन भुजाओं के अतिरिक्त पाँच और मोड्यूल ले जाये जायेंगे जो स्टेशन को कार्य करने की पूरी क्षमता प्रदान करेंगे। इसके अलावा फ्रीडम में अंकुश तथा क्षत-चिन्ह (स्कार) होंगे। इससे स्टेशन के आकार को बढ़ाया जा सकेगा।

फ्रीडम एक जटिल वासनीय कक्षीय स्टेशन होगा जिस पर तीस अन्तरिक्ष यात्री प्रयोग कर रहे होंगे। यहां भारी तादाद में नये उत्पादों का

निर्माण किया जा सकेगा। भारहीनता की अवस्था में शोधकर्त्ता प्रोटीन रवो (क्रिस्टल), तरल-गतिकी, पादप, जन्तु तथा मानव की शरीर क्रिया विज्ञान का अध्ययन करेगा। इससे उत्तम औषधियों, उत्तम फसलो तथा बढ़िया द्रवित ईंधन का निर्माण हो पायेगा।

शून्य गुरुत्व अथवा भारहीनता की स्थिति में अनेक प्रयोग किये भी गये हैं। भारहीनता की स्थिति मे सल्यूत–6 के अन्तरिक्ष-यात्रियो ने सिलिकॉन के काफी बड़े-बड़े मणिभ तैयार किये है सिलिकॉन के इन मणिभो का इस्तेमाल लेसर-प्रयोगों तथा कम्प्यूटर चिप्पड़ों मे किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्तरिक्ष में सवहन धाराओ के अभाव मे अनेक चीजें शुद्धता से मिलाई जा सकती है।

अंतरिक्ष मे भारहीनता की स्थिति मे निर्मित गाल्लियम आर्सेनाइड के सेमीकडक्टर-मणिभ अत्यन्त शुद्ध तथा बड़े होते है। इससे बने समूचे वृहद चिप्पड़ काम मे लिये जा सकते है। इससे तकनीकी मे क्रांति आ जायेगी। अंतरिक्ष में इडियम एंटिमोनाइड भी तैयार किये गये जहां ये पृथ्वी पर विषमांगी है, अंतरिक्ष मे समांगी होंगे। गाल्लियम आर्सेनाइड मणिभो के लेसरो से तंतु-काचीय (फाइबर ऑपटिक्स) सचार-प्रणाली विकसित की जा रही है। इससे संचार-प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन होंगे। गाल्लियम आर्सेनाइड सिलिकोन की अपेक्षा अधिक ऊर्जा ग्रहण करता है इससे अधिक हल्के तथा पतले सौर-सेल निर्मित किये जा सकें। सोवियत सघ द्वारा स्थापित 'मीर' अंतरिक्ष स्टेशन मे भी अनेक प्रयोग चल रहे है।

फ्रीडम में मानव दीर्घ-काल तक रह सकता है। दीर्घकालीन भारहीनता का मानव पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका अध्ययन किया जा सकेगा। 'मीर' में भी यह प्रयोग चल रहा है। यदि हम अन्तर्ग्रहीय यात्रा करना चाहते है तो यह अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। यदि 'फ्रीडम' पर भारहीनता के अध्ययन ने यह दर्शाया कि मानव द्वारा अंतरिक्ष में यात्रा कई साल की जा सकती है तो इससे 'अन्तर्ग्रहीय यात्रा' के द्वार खुल जायेंगे। अंतरिक्ष स्टेशन फ्रीडम एक प्रक्षेपण-स्थल का कार्य भी करेगा। तब नासा के प्रमुख दो लक्ष्य होंगे। प्रथम चन्द्रमा पर अड्डा स्थापित करना तथा द्वितीय मंगल की यात्रा का शुभारम्भ करना। चन्द्रमा या मंगल की वास्तविक यात्रा अतरिक्ष स्टेशनों से प्रारम्भ होगी। मानव को पहले से अंतरिक्ष-शटलो द्वारा इन स्टेशनो पर पहुंचाना होगा। नासा का यह विश्वास है कि 2005 तक मानव चन्द्रमा पर अड्डे की आधार-शिला रख देगा। हम मंगल पर 2015 तक पहुंचने की आशा रखते हैं।

इन लक्ष्यों तक पहुंचने से पहले हमें वर्तमान राकेट छोड़ने का तरीका बदलना होगा। हमें एकल बूस्टर की अपेक्षा अनेक शटलों का उपयोग करना होगा जो मंगल-यान के हिस्से अंतरिक्ष स्टेशन ले जायेगा। तब अंतरिक्ष स्टेशन पर इन हिस्सों को जोड़कर मंगल यान तैयार किया जायेगा।

अब नये प्रकार के शटल बनाये जा रहे हैं। ये 'शटल-सी' के नाम से जाने जायेंगे। इससे अधिक परिष्कृत शटल, **'शटल-जेड'** के नाम से जाने जायेंगे। यह शटल दो लाख पचास हजार पोंड से पांच लाख पोंड का भार वहन करेगा इसे मंगल-यान के लिये अंतरिक्ष स्टेशन तक केवल पांच से दस ट्रिप करने होंगे।

'मंगल-यान' का आकार कैसा होगा? यह 'फ्रीडम' द्वारा निर्धारित किया जायेगा। दीर्घ यात्रा के दौरान भारहीनता की समस्या का निदान करने के लिये यान में कृत्रिम गुरुत्व उत्पन्न करना होगा। इसके लिये 'पोर्टेबल सेन्ट्रीफ्यूज' ले जाने होंगे। कृत्रिम-गुरुत्व के लिये हमें एक विशाल पगहे या खूंटे के एक सिरे पर अंतरिक्ष यात्री वाले मोड्यूल को लगाना होगा तथा खूंटे के दूसरे सिरे पर समान भार का मोड्यूल लगाना होगा। यदि एक बार हमें इसके चक्रण में सफलता मिल जायेगी तो मानव मंगल की सम्पूर्ण यात्रा 1-g (गुरुत्व) में कर पायेगा। उसे शून्य गुरुत्व या पूर्ण भारहीनता से छुटकारा मिलेगा।

मंगल पर मानव भेजने से पूर्व नासा चन्द्रमा पर अड्डा बनाने में अधिक रुचि दिखायेगा। इससे मंगल तथा अन्य ग्रहों की यात्रा और आसान हो जायेगी। फ्रीडम को प्रक्षेपण का स्टेज बनाते हुए हम अंतरिक्ष-स्टेशन सरीखे मोड्यूल चन्द्रमा पर ले जायेंगे। इन्हें चन्द्रमा की धरती के भीतर लगाये जायेंगे। इससे विकिरणों से इनका बचाव हो सकेगा। वहां एक छोटा सा अड्डा स्थापित किया जायेगा जिसमें छः व्यक्ति कार्य करेंगे। वे इस चन्द्र अड्डे पर दो सप्ताह (चन्द्र दिनों के अनुसार) कार्य करेंगे तब पुनः फ्रीडम अंतरिक्ष स्टेशन लौट आयेंगे। चन्द्रमा पर अड्डा स्थापित करने के पश्चात् वह सुनहरा अवसर भी आयेगा जब समानव मंगल यात्रा का शुभारम्भ होगा और हमारा मंगल के लिये लम्बे समय से संजोया हुआ सुहावना स्वप्न पूर्ण होगा।



मन-प्रक्षेपण

हम जानते है कि इन्द्रियों से परे की अनुभूति अतीन्द्रिय होती है। जब मन का प्रक्षेपण होता है तो परकाया-प्रवेश संभव होता है। शंकराचार्य ने परकाया प्रवेश करके ही काम की अनुभूति ली थी। हमारे शास्त्रो में परकाया प्रवेश की अनेक विधियां प्रचलित है :—

पांतजलि योग सूत्र "बन्धकरण शैथिल्यात् प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेश" अर्थात् चित्त के बन्धन के कारणो को शिथिल करने से तथा प्रचरण के सम्यक् ज्ञान से पर-शरीर में प्रवेश सिद्ध होता है। बन्धकरण शैथिल्यात् से आशय है–आसक्ति, लेप, विकार, वासना से मुक्ति।

संयम के आश्रय से चित्त के बन्धन के कारणों को शिथिल (ढीला) करके और आत्म प्रचरण के संज्ञान का अनुभव करके योगी सहज संयम के आश्रय से अपनी आत्मा को मानव, पशु, किसी के भी देह मे प्रविष्ट कर सकता है। यह परकाया प्रवेश सद्यः-मृत शरीर मे ही होता है।

मृतकाया मे प्रवेश के उपरान्त यदि योगी को किसी निश्चित अवधि के उपरान्त अपने निज शरीर मे लौट आना अभिष्ट होता है, तो वह अपने शरीर को कुम्भक प्राणायाम द्वारा कुम्भित करके योगासन में सुस्थित अवस्था में सुरक्षित रख आता है। उसके सुरक्षित शरीर का कोई प्राणी भूल से भी स्पर्श कर लेता है तो वह शरीर मृत हो जाता है और फिर योगी की आत्मा अपने निज शरीर मे नही लौट पाती।

परकाया प्रवेश तथा अपने निज शरीर मे पुनः प्रवेश ब्रह्मरन्ध्र द्वारा होता है, किसी अन्य इन्द्रिय छिद्र द्वारा नही।

प्राण तत्व वाहिनी नाड़ी से भी अधिक सूक्ष्म है, चित्रवाहा नाडी, जिसमे "बन्धन कारण शैथिल्यात्" के द्वारा किसी की देह मे प्रवेश किया जा सकता है। योगसूत्र के एक अन्य सूत्र "यथाभिमतध्यानाद्वा" के अनुसार भी परकाया प्रवेश की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

इन लक्ष्यों तक पहुंचने से पहले हमें वर्तमान राकेट छोड़ने का तरीका बदलना होगा। हमें एकल बूस्टर की अपेक्षा अनेक शटलों का उपयोग करना होगा जो मंगल-यान के हिस्से अंतरिक्ष स्टेशन में जायेगा। तब अंतरिक्ष स्टेशन पर इन हिस्सों को जोड़कर मंगल यान तैयार किया जायेगा।

अब नये प्रकार के शटल बनाये जा रहे हैं। ये **'शटल-सी'** के नाम से जाने जायेंगे। इससे अधिक परिष्कृत शटल, **'शटल-जैड'** के नाम से जाने जायेंगे। यह शटल दो लाख पचास हजार पौंड से पांच लाख पौंड का भार वहन करेगा इसे मंगल-यान के लिये अंतरिक्ष स्टेशन तक केवल पांच से दस ट्रिप करने होंगे।

'मंगल-यान' का आकार कैसा होगा? यह 'फ्रीडम' द्वारा निर्धारित किया जायेगा। दीर्घ यात्रा के दौरान भारहीनता की समस्या का निदान करने के लिये यान में कृत्रिम गुरुत्व उत्पन्न करना होगा। इसके लिये **'पोर्टेबल सेन्ट्रीफ्यूज'** ले जाने होंगे। कृत्रिम-गुरुत्व के लिये हमें एक विशाल पगहे या खूंटे के एक सिरे पर अंतरिक्ष यात्री वाले मोड्यूल को लगाना होगा तथा खूंटे के दूसरे सिरे पर समान भार का मोड्यूल लगाना होगा। यदि एक बार हमें इसके चक्रण में सफलता मिल जायेगी तो मानव मंगल की सम्पूर्ण यात्रा 1-g (गुरुत्व) में कर पायेगा। उसे शून्य गुरुत्व या पूर्ण भारहीनता से छुटकारा मिलेगा।

मंगल पर मानव भेजने से पूर्व नासा चन्द्रमा पर अड्डा बनने में अधिक रुचि दिखायेगा। इससे मंगल तथा अन्य ग्रहों की यात्रा और आसान हो जायेगी। फ्रीडम को प्रक्षेपण का स्टेज बनाते हुए हम अंतरिक्ष-स्टेशन सरीखे मोड्यूल चन्द्रमा पर ले जायेंगे। इन्हें चन्द्रमा की धरती के भीतर लगाये जायेंगे। इससे विकिरणों से इनका बचाव हो सकेगा। वहां एक छोटा सा अड्डा स्थापित किया जायेगा जिसमें छः व्यक्ति कार्य करेंगे। वे इस चन्द्र अड्डे पर दो सप्ताह (चन्द्र दिनों के अनुसार) कार्य करेंगे। तब पुनः फ्रीडम अंतरिक्ष स्टेशन लौट आयेंगे। चन्द्रमा पर अड्डा स्थापित करने के पश्चात् वह सुनहरा अवसर भी आयेगा जब समानव मंगल यात्रा का शुभारम्भ होगा और हमारा मंगल के लिये लम्बे समय से संजोया हुआ सुहावना स्वप्न पूर्ण होगा।

□□

मन-प्रक्षेपण

हम जानते है कि इन्द्रियों से परे की अनुभूति अतीन्द्रिय होती है। जब मन का प्रक्षेपण होता है तो परकाया-प्रवेश सम्भव होता है। शंकराचार्य ने परकाया प्रवेश करके ही काम की अनुभूति ली थी। हमारे शास्त्रों में परकाया प्रवेश की अनेक विधियां प्रचलित है :—

पातंजलि योग सूत्र "बन्धकरण शैथिल्यात् प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेश" अर्थात् चित्त के बन्धन के कारणों को शिथिल करने से तथा प्रचरण के सम्यक् ज्ञान से पर-शरीर में प्रवेश सिद्ध होता है। बन्धकरण शैथिल्यात् से आशय है--आसक्ति, लेप, विकार, वासना से मुक्ति।

संयम के आश्रय से चित्त के बन्धन के कारणो को शिथिल (ढीला) करके और आत्म प्रचरण के संज्ञान का अनुभव करके योगी सहज संयम के आश्रय से अपनी आत्मा को मानव, पशु, किसी के भी देह में प्रविष्ट कर सकता है। यह परकाया प्रवेश सद्य.-मृत शरीर में ही होता है।

मृतकाया में प्रवेश के उपरान्त यदि योगी को किसी निश्चित अवधि के उपरान्त अपने निज शरीर मे लौट आना अभिष्ट होता है, तो वह अपने शरीर को कुम्भक प्राणायाम द्वारा कुम्भित करके योगासन मे सुस्थित अवस्था मे सुरक्षित रख आता है। उसके सुरक्षित शरीर का कोई प्राणी भूल से भी स्पर्श कर लेता है तो वह शरीर मृत हो जाता है और फिर योगी की आत्मा अपने निज शरीर मे नही लौट पाती।

परकाया प्रवेश तथा अपने निज शरीर मे पुनः प्रवेश ब्रह्मरन्ध्र द्वारा होना है, किसी अन्य इन्द्रिय छिद्र द्वारा नही।

प्राण तत्व वाहिनी नाड़ी से भी अधिक सूक्ष्म है, चित्रवाहा नाड़ी, जिसमे "बन्धन कारण शैथिल्यात्" के द्वारा किसी को देह में प्रवेश किया जा सकता है। योगसूत्र के एक अन्य सूत्र "यथाभिमतध्यानाद्धा" के अनुसार भी परकाया प्रवेश की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

इन लक्ष्यों तक पहुंचने से पहले हमें वर्तमान राकेट छोड़ने का तरीका बदलना होगा। हमें एकल बूस्टर की अपेक्षा अनेक शटलों का उपयोग करना होगा जो मगल-यान के हिस्से अंतरिक्ष स्टेशन ले जायेगा। तब अंतरिक्ष स्टेशन पर इन हिस्सों को जोड़कर मंगल यान तैयार किया जायेगा।

अब नये प्रकार के शटल बनाये जा रहे है। ये **'शटल-सी'** के नाम से जाने जायेंगे। इससे अधिक परिष्कृत शटल, **''शटल-जेड'** के नाम से जाने जायेंगे। यह शटल दो लाख पचास हजार पौंड से पाच लाख पौंड का भार वहन करेगा इसे मंगल-यान के लिये अंतरिक्ष स्टेशन तक केवल पाच से दस ट्रिप करने होंगे।

'मंगल-यान' का आकार कैसा होगा? यह 'फ्रीडम' द्वारा निर्धारित किया जायेगा। दीर्घ यात्रा के दौरान भारहीनता की समस्या का निदान करने के लिये यान में कृत्रिम गुरुत्व उत्पन्न करना होगा। इसके लिये **'पोर्टेबल सेन्ट्रीफ्यूज'** ले जाने होंगे। कृत्रिम-गुरुत्व के लिये हमे एक विशाल पगहे या खूटे के एक सिरे पर अंतरिक्ष यात्री वाले मोड्यूल को लगाना होगा [illegible]
खूटे के दूसरे सिरे पर ममान भार का मोड्यूल लगाना होगा। यदि एक [illegible]
हमें इसके चक्रण मे सफलता मिल जायेगी तो मानव मंगल की सम्पूर्ण
1-g (गुरुत्व) मे कर पायेगा। उसे शून्य गुरुत्व या पूर्ण भारहीनता से
कारा मिलेगा।

मगल पर मानव भेजने से पूर्व नासा [illegible]मा पर अड्डा बनने
रुचि दिखायेगा। इससे मगल तथा [illegible] यात्रा और
जायेगी। फ्रीडम को प्रक्षेपण का स्टे[illegible]
मोड्यूल चन्द्रमा पर ले जायेगे। इ[illegible] के
जायेंगे। इससे विकिरणो से इनका बचा[illegible]
स्थापित किया जायेगा जिसमें छ[illegible]
दो मप्ताह (चन्द्र दिनों के अनुसार) [illegible]
स्टेशन लौट आयेंगे। चन्द्रमा पर अड्डा [illegible]
अवसर भी आयेगा जब समानव मगल [illegible]
मंगल के लिये लम्बे ममय से संजोया हुआ [illegible]

हठयोग की खेचरी मुद्रा द्वारा भी परकाया प्रवेश की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। स्वरोदय विज्ञान के अनुसार मणिपूरक चक्र (एपिजेस्ट्रिक प्लेक्सस) पर ध्यान करके परकाया प्रवेश किया जा सकता है।

मन से भी सूक्ष्म सत्ताएं होती है, लेकिन हम उन्हें मन के रूप में ही अंगीकार करेंगे। मन का प्रक्षेपण होने पर परकाया प्रवेश संभव होता है। मन से मस्तिष्क का गहरा संबंध है। यही मन इन्द्रियों को दिव्यता प्रदान कर उन्हें दूरगामी, तथा पारदर्शी बना देता है तथा अतीन्द्रिय जगत की अनुभूति प्रदान कराता है।

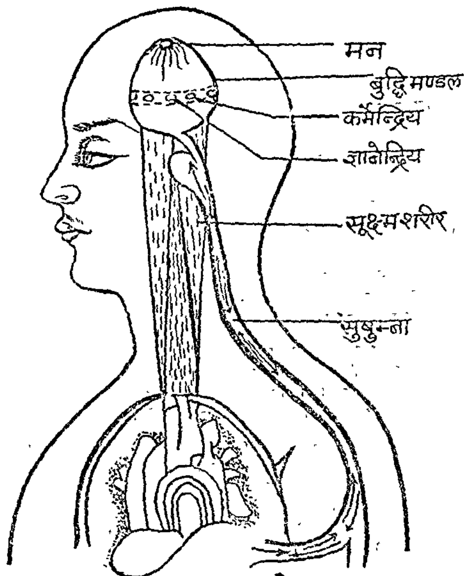
मन का मस्तिष्क से सम्बन्ध—

शास्त्रों के अनुसार मन, मानव के मस्तिष्क में ब्रह्मरन्ध्र नामक स्थान मे स्वर्णिम ज्योतिमय पिंड "बुद्धिमण्डल" के शिखर पर होता है। शास्त्रों के अनुसार भी मन का सम्बन्ध विशेष रूप से इन्द्रियों, बुद्धि तथा स्थूलदेह से होता है। प्रतिक्षण इन्द्रियों द्वारा बाहर से लाये गये विषय ज्ञान, क्रिया, स्वाद, तथा आन्तरिक सम्वेदनों से प्रतिबिम्बित होने (आदानकर्म या सेन्सरी संवेदन), फिर इन्हे बुद्धि मण्डल मे समर्पित कर देने (प्रदान कर्म) और इसी प्रकार बुद्धि तत्व के द्वारा निर्णय तथा आदेशो का आदान करके इन्द्रियों को प्रदान करने (मोटर संवेदन) का कार्य करता है। इन्द्रियों से सब आदेशों का परिपालन कराने के लिये बुद्धि तथा इन्द्रियों में सदा सम्बन्ध स्थापित रखना अनिवार्य होने के कारण मन का सदा दोनों से सम्बन्ध रहता है। बुद्धि की प्रेरणा के बिना मन तथा इन्द्रियां स्वतः कोई कर्म नही कर सकते। प्रत्येक विषय या कर्म के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करके यह मन बुद्धिमण्डल मे इनका निर्णय करता है। इसी प्रकार बुद्धि-तत्व की आज्ञापालन में सदा तत्पर बना मन इन्द्रियों को भी ज्ञान और कर्म में प्रवृत रखता है। मोक्ष प्राप्ति पर्यन्त भी यह मन बुद्धि के साथ सहकारी बनकर रहता है।

उपरोक्त धार्मिक विवेचना से स्पष्ट है कि मन को मस्तिष्क में ही होना चाहिये तथा मन का मस्तिष्क से गहरा सम्बन्ध होना चाहिये।

आधुनिक संदर्भों में मन और मस्तिष्क का सम्बन्ध—

मन का मस्तिष्क से सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व हमें पॉल मेकलीन के **'ट्राइन ब्रेन मोडल'** की संकल्पना को समझना होगा। पॉल मेकलीन मेन्टल हेल्थ की नेशनल इंस्टीट्यूट में मस्तिष्क के विकास तथा व्यवहार (बिहेवियर) की प्रयोगशाला के अध्यक्ष है। मेकलीन के अनुसार मस्तिष्क को निम्न तीन भागों में बाटा गया है—



सूक्ष्म-शरीर और मन

निद्रावृति के निरोध से भी परकाया प्रवेश संभव है। चन्द्र नाड़ी मनोमय शरीर की प्राणतत्व वाहिनी नाड़ी है। इसके निरोध से निद्रावृति का भी निरोध हो जाता है तब मनोमय शरीर (सूक्ष्म), भौतिक शरीर से बाहर जाकर परकाया प्रवेश कर सकता है।

हठयोग की खेचरी मुद्रा द्वारा भी परकाया प्रवेश की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। स्वरोदय विज्ञान के अनुसार मणिपूरक चक्र (एपिजेस्ट्रिक प्लेक्सस) पर ध्यान करके परकाया प्रवेश किया जा सकता है।

मन से भी सूक्ष्म सत्ताएं होती है, लेकिन हम उन्हें मन के रूप मे ही अंगीकार करेंगे। मन का प्रक्षेपण होने पर परकाया प्रवेश संभव होता है। मन से मस्तिष्क का गहरा संबंध है। यही मन इन्द्रियों को दिव्यता प्रदान कर उन्हे दूरगामी, तथा पारदर्शी बना देता है तथा अतीन्द्रिय जगत की अनुभूति प्रदान कराता है।

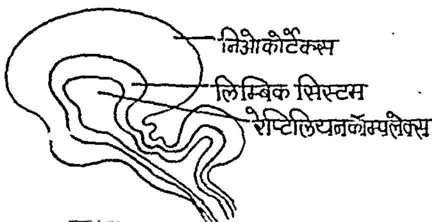
मन का मस्तिष्क से सम्बन्ध—

शास्त्रों के अनुसार मन, मानव के मस्तिष्क मे ब्रह्मरन्ध्र नामक स्थान में स्वर्णिम ज्योतिमय पिंड "बुद्धिमण्डल" के शिखर पर होता है। शास्त्रों के अनुसार भी मन का सम्बन्ध विशेष रूप से इन्द्रियो, बुद्धि तथा स्थूलदेह से होता है। प्रतिक्षण इन्द्रियों द्वारा बाहर से लाये गये विषय ज्ञान, क्रिया, सम्वाद, तथा आन्तरिक सम्वेदेनो से प्रतिबिम्बित होने (आदानकर्म या सेन्सरी संवेदन), फिर इन्हे बुद्धि मण्डल में समर्पित कर देने (प्रदान कर्म) और इसी प्रकार बुद्धि तत्व के द्वारा निर्णय तथा आदेशों का आदान करके इन्द्रियों को प्रदान करने (मोटर संवेदन) का कार्य करता है। इन्द्रियो से सब आदेशों का परिपालन कराने के लिये बुद्धि तथा इन्द्रियों मे सदा सम्बन्ध स्थापित रखना अनिवार्य होने के कारण मन का सदा दोनों से सम्बन्ध रहता है। बुद्धि की प्रेरणा के बिना मन तथा इन्द्रियां स्वतः कोई कर्म नही कर सकते। प्रत्येक विषय या कर्म के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करके यह मन बुद्धिमण्डल में इनका निर्णय करता है। इसी प्रकार बुद्धि-तत्व की आज्ञापालन में सदा तत्पर बना मन इन्द्रियो को भी ज्ञान और कर्म मे प्रवृत रखता है। मोक्ष प्राप्ति पर्यन्त भी यह मन बुद्धि के साथ सहकारी बनकर रहता है।

उपरोक्त धार्मिक विवेचना से स्पष्ट है कि मन को मस्तिष्क मे ही होना चाहिये तथा मन का मस्तिष्क से गहरा सम्बन्ध होना चाहिये।

आधुनिक संदर्भों में मन और मस्तिष्क का सम्बन्ध—

मन का मस्तिष्क से सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व हमे पॉल मेकलीन के **'ट्राइन ब्रेन मोडल'** की संकल्पना को समझना होगा। पॉल मेकलीन मेन्टल हेल्थ की नेशनल इंस्टीट्यूट में मस्तिष्क के विकास तथा व्यवहार (बिहेविअर) की प्रयोगशाला के अध्यक्ष है। मेकलीन के अनुसार मस्तिष्क को निम्न तीन भागों में बाटा गया है—



(1) रेप्टिलियन काम्पलेक्स (2) लिम्बिक सिस्टम (3) निओकोर्टेक्स। रेप्टिलियन कोम्पलेक्स को संक्षिप्त मे आर-काम्पलेक्स से अभिव्यक्त करते हैं। आर-काम्पलेक्स वास्तव में 'न्यूरल चेसिस' से विकसित हुआ है। यह मानव-मस्तिष्क का अत्यन्त प्राचीन भाग है। न्यूरल चेसिस स्पाइनलकार्ड, पश्चमस्तिष्क तथा मध्यमस्तिष्क के सम्मिलन से बना है। पश्चमस्तिष्क में मेड्यूला तथा पोन्स होते है। न्यूरल चेसिस, जनन तथा आत्म परिरक्षण, हृदय, रक्त परिसंचरण तथा श्वसन के नियमन की मूल न्यूरल मशीनरी है। न्यूरल चेसिस का चालक (कन्डक्टर) मध्य मस्तिष्क को घेरे रहता है। इस चालक को न्यूरोएनेटोमिस्ट आलफेक्टोस्ट्रीएटम, कार्पस स्ट्रीएटम एवं ग्लोबस पेलीडस कहते हैं। मेकलीन ने न्यूरल चेसिस और इसके चालक को ही सम्मिलित रूप से रेप्टिलियन या 'आर-काम्पलेक्स' नाम दिया है। आर-काम्पलेक्स, लिम्बिक सिस्टम से घिरा हुआ है।

'लिम्बिक सिस्टम' मे थेलेमस, हाइपोथेलेमस, एमाइगडेला, पिट्टपूरी तथा हिप्पोकेम्पस आदि अंग आते है। 'निओकार्टेक्स' मे फ्रन्टल लॉब, पेराइटल लॉब, टेम्पोरल लॉब तथा ऑक्सीपिटल लॉब आते हैं।

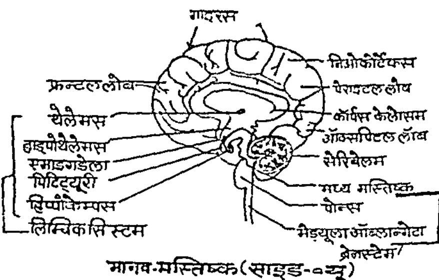
मेकलीन ने यह सिद्ध किया कि 'आर-काम्पलेक्स' का सम्बन्ध प्रमुख तौर पर आक्रमण शील व्यवहार, प्रादेशिकता (टेरिटोरिएलिटी), आनुष्ठानिक (धार्मिक कृत्य) तथा सामाजिक धर्म तंत्र की स्थापना (सोसल-हाइअराकीकल) से है। लिम्बिक-सिस्टम का सम्बन्ध प्रमुख तौर पर तीव्र तथा सुस्पष्ट (विविध)

संवेगो (इमोशन्स) से होता है। लिम्बिक सिस्टम में इलेक्ट्रिकल डिस्चार्जेज के परिणाम **"साइकोसिस"** या **"साइकेडेलिक"** या हल्यूसिनोजेनिक दवाइयों द्वारा उत्पन्न परिणाम के समान होता है। साइकोट्रोपिक ड्रग्स का प्रभाव मूलतः लिम्बिक सिस्टम पर ही पड़ता है। पिटिट्यूरी (पीयूष) तथा अन्य अंतःस्रावी ग्रंथियों पर नियन्त्रण रखती हैं, इसका सीधा संबध लिम्बिक सिस्टम से होता है। लिम्बिक सिस्टम "मूड में परिवर्तन" लाता है जो व्यक्ति की मानसिक स्थिति को दर्शाता है। इसी लिम्बिक सिस्टम मे बादाम के आकार की एक संरचना पायी जाती है, इसे **'एमाइगडेला'** कहते हैं। इसका सम्बन्ध आक्रामक प्रवृति तथा भय से होता है। एमाइगडेला मे विद्युतीय उद्दीपन से आक्रामक प्रवृति को भय की प्रवृति में या विलोमत (वाइस-वसा) परिवर्तन किया जा सकता है। संवेगों का नियन्त्रण एमाइगडेला तथा हाइपोथेलेमस से स्रवित हार्मोनल प्रोटीन 'ए. सी. टी. एच.' (एडरिनोकोर्टिको ट्रोपिक हार्मोन) के द्वारा होता है, चिन्ता, ध्यान का केन्द्रीकरण, विजुअल रिटेन्शन आदि इस हार्मोन से नियन्त्रित किये जाते है। इसी प्रकार से सम्वेदगी तथा यौन गतिविधियों का नियन्त्रण इसी भाग से होता है।

निओकोर्टेक्स में **'फ्रन्टल-लोब'** का सम्बन्ध विचार शक्ति, यादास्त शक्ति तथा विभिन्न कार्यों के नियमन से होता है। **'पेराइटल'** का सम्बन्ध आकाशीय अवगम तथा मस्तिष्क एव शरीर के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान करने से है। **'टेम्पोरल-लोब'** का कार्य अनेक प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक (परसेप्चूअल) क्रियाओ से है तथा **'ऑक्सिपिटल-लोब'** का सम्बन्ध दृष्टि से है। यादास्त की क्षीणता (अमनेसिया), विचारो मे तारतम्य का अभाव अलेक्सिया, तथा अफेमिया आदि इन विभिन्न लोब्स मे क्षति के परिणाम स्वरूप होते है।

फ्रायड का ट्राइन ब्रेन, मेकलीन के ट्राइनब्रेन से कुछ भिन्न है। फ्रायड के अनुसार "ह्यूमन साइके" के तीन भाग है—इड, ईगो तथा सुपरइगो। "मेकलीनियन **'आर-काम्प्लेक्स'** का आक्रामक तथा लैंगिक पक्ष, फ्रायडियन **'इड'** से मिलता जुलता है। **'इड'** से आशय है—हमारे स्वभाव की पाशविक प्रवृत्ति। लेकिन फ्रायड ने **'आर-काम्प्लेक्स'** के सामाजिक धर्म-तन्त्र या आनुष्ठानिक पहलू पर वही जोर नही दिया है। इसी प्रकार से **'इगो'** को संवेगों की क्रिया मे नही जोड़ा गया है जो **'मेकलीनियन लिम्बिक सिस्टम'** का महत्वपूर्ण पार्ट है। **'इगो'** मे आशय धार्मिक प्रभु प्रकाश (रिलिजिअस एपिफेनी) मे है। सुपर इगो प्रमुखतया अमूर्त तत्व को चिन्तित नही करता बल्कि आर-काम्प्लेक्स की सामाजिक तथा अनुष्ठानिक प्रवृत्ति से मिलता है। इसके बजाय

फ्रायड ने मन के जो तीन भाग किये हैं वे ज्यादा सही बैठते हैं—चेतन, उपचेतन तथा अवचेतन मन।



मानव-मस्तिष्क (साइड-व्यू)

अब प्रश्न यह है कि मन का तथा मस्तिष्क का सम्बन्ध क्या है? हमारे शास्त्रों ने मन की कणीय प्रकृति बताई है। हमारे शास्त्रों ने मन को आकार प्रदान किया है। "यह शुक्र तारे सा मन हमारे बुद्धिमण्डल के शिखर पर अवस्थित है।" इससे स्पष्ट है कि मन मस्तिष्क में ही कहीं है, या मन मस्तिष्क से अलग नहीं है। मन का सीधा सम्बन्ध संवेगों से है या मन संवेगों का निर्धारण करता है। मेकलियन ब्रेन का लिम्बिक सिस्टम भी संवेगों का निर्धारण करता है। अतः मन का सीधा सम्बन्ध मेकलीनियन लिम्बिक सिस्टम से होना चाहिये। हम कह सकते हैं कि मन लिम्बिक सिस्टम का प्रतिबिम्ब है। लेकिन यह स्वयं लिम्बिक सिस्टम नहीं है या हम यह नहीं कह सकते कि मन मस्तिष्क का अंश होगा। क्योंकि "अंश" कहने में कठिनाई यह है कि विज्ञानियों ने मन को किसी अंग या फिजिकल एन्टिटी के रूप में नहीं देखा है जैसा कि सूक्ष्म शरीर में यह शुक्र तारे सा बुद्धिमण्डल के शिखर पर अवस्थित होना बताया गया है। जिस दिन विज्ञान मन के अति सूक्ष्म कण (फाइनर) की परख कर लेगा उस दिन उसके शुक्र तारे से स्वरूप को जाना जा सकेगा। हालांकि सूक्ष्म शरीर के बारे में परामनोवैज्ञानिकों का कहना है कि सूक्ष्म शरीर के इलेक्ट्रॉन साधन भौतिक शरीर की अपेक्षाकृत अधिक उच्च आवृत्ति में गमन करते हैं। 'किर्लियान-फोटोग्राफी' का

आधार भी यही है। वैज्ञानिकों द्वारा इसकी व्यापक पुष्टि होना शेष है। लेकिन इस बात मे हम कितना साम्य पाते है कि वैदिक साहित्य में जिस मन को बुद्धि के शिखर पर बताया गया है, वह मस्तिष्क मे मौजूद है तथा लिम्बिक सिस्टम का प्रतिबिम्ब है। मनुष्य के सवेगों (आवेगों तथा आवेशों) पर हाइपोथेलेमस (लिम्बिक सिस्टम का एक पार्ट) नियत्रण रखता है। उससे पिनियल (तीसरी आंख) तथा पिटिट्यूरी ग्रन्थि प्रभावित होते है। ये अन्य ग्रन्थियो को प्रभावित करती है जिससे संवेग प्रकट होते है। तत्ववेत्ताओं के अनुसार ये सवेग इस स्थूल शरीर मे सृजित नही होते बल्कि सूक्ष्मतर शरीर मे सृजित होते है। सूक्ष्म शरीर से आने वाले प्रतिबिम्ब और प्रकपन हाइ-पोथेलेमस द्वारा एन्डोक्राइनल ग्रन्थियों मे उतरते है। उनका मानना है कि सवेग (भाव) सूक्ष्म शरीर के स्तर पर सूक्ष्म चेतना के साथ जन्म लेता है। स्मृति, कल्पना और चिन्तन की पवित्रता से भावतत्र प्रभावित होता है और इससे ग्रन्थियो का स्राव बदल जाता है। यह परिवर्तन मनुष्य की अतीद्रिय चेतना को सक्रिय करने मे बहुत सहयोग करता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो स्मृति, कल्पना और चिन्तन मे मस्तिष्क का एक विशिष्ट केन्द्र पुनसंगठित (रिआर्गनाइज) होता है। आधुनिक वैज्ञानिक शोधों से यह बात सामने आयी है, देखिये साइन्स डाइजेस्ट (अमेरिकन) मई 83। इन रिसर्चेज से यह पुरानी अवधारणा बदल गई कि मस्तिष्क प्रारम्भ (जन्म) से ही परिपूर्ण होता है। मस्तिष्क के निश्चित न्यूरल कनेक्शन होते हैं और इन न्यूरल कनेक्शन्स का जिनका कि निश्चित लोकेशन होता है, उन्हे एक निश्चित कार्यभार सम्भलाये हुए होता है। जन्मजात न्यूरल कनेक्शन मे परिवर्तन हो जाता है तथा ब्रेनलोकेशन का पुर्नगठन हो जाता है।

फिजियोलोजिस्ट माइकेल मजेनिच, सेन फ्रासिको केलिफोर्निया यूनिवर्सिटी, ने अपने प्रयोगो से यह दर्शाया कि यदि किसी बन्दर को अपनी विशिष्ट अंगुलियो द्वारा लगातार एक लीवर को चलाना सिखाया जाता है तो लम्बे समय मे मस्तिष्क का वह भाग पुनर्गठित हो जाता है जो इस कार्य से सम्बन्धित होता है। यदि किसी अंगुली को लम्बे समय तक विशिष्ट रूप से कार्य में लिया जाता तो सम्बन्धित कोर्टिकल क्षेत्र अधिक संकुचित होता है। एक पियानो एक्सर्ट यदि पियानो का दीर्घकाल से उपयोग कर रहा है तो उसके मस्तिष्क के कोर्टिकल क्षेत्र अधिक संकुचित होगे तथा उक्त कार्य को करने के लिये ढल जायेंगे (अडेप्ट)। जब कोर्टेक्स किसी नये स्किल की

पहचान करता है तो कॉर्टिकल कोशिकाओं का क्षेत्र उस स्किल को विकसित करने के लिये फैलने का प्रयास करता है ।

इसी प्रकार से ध्यान या साधना में मस्तिष्क का कोई विशिष्ट भाग इतना पुनर्संगठित हो सकता है कि उसके कार्य अतिन्द्रिय रूप धारण कर सकते हैं ।

मन केवल मस्तिष्क में ही हो सकता है । यह इस युक्ति के भी उपयुक्त बैठता है कि मनुष्य के सजीव मस्तिष्क को शरीर के अन्य भागों को नष्ट कर देने पर भी एक न एक दिन पृथक किया जा सकेगा और उसे जीवित रखा जा सकेगा । क्लीव लैंड मे मेट्रोपोलिटन जनरल हॉस्पिटल के न्यूरोसर्जन प्रोफेसर रोबर्ट व्हाइट कुछ ऐसा ही सोचते है । विज्ञानी ऑरियाना फलेसी ने न्यूरोसर्जन के साथ कार्य करते हुए एक प्रयोग में, एक रेसस-बन्दर के मस्तिष्क को, उसके शरीर से पृथक किया । उन्होंने शरीर को हटा लिया, तथा मस्तिष्क की कैरोटिड धमनी को दूसरे बन्दर से जोड़ दिया । इससे दूसरे बन्दर से पृथक हुए मस्तिष्क मे रक्त का संचार होने लगा । मस्तिष्क केवल 5 घंटे तक जीवित रहा लेकिन भविष्य मे इस तकनीक को श्रेष्ठ बनाया जा सकेगा । इससे स्पष्ट है कि मन केवल मस्तिष्क में ही हो सकता है। डॉ. लियो मेर्सीपास्ट का कहना है कि मस्तिष्क बेहतर कार्य करता है, जब उसे शरीर से पृथक कर दिया जाय ।

योगी शरीर को कष्ट देते है, और केवल मस्तिष्क मे ऊर्जा संचित करते है तो मस्तिष्क बेहतर कार्य करने लगता है । तब यदि मस्तिष्क अतीन्द्रिय की तरह कार्य करे तो हमे आश्चर्य नहीं होना चाहिये ।

बहुत से न्यूरोबाइलोजिस्ट का यह विश्वास है कि न्यूरोन मस्तिष्क की कार्यविधि का सक्रिय तत्व है । यद्यपि इस बात के भी प्रमाण है कि कुछ विशिष्ट यादास्तें तथा अन्य कोग्नीटिव क्रियाए, मस्तिष्क के अणुओं मे यथा आर. एन. ए. या लघु प्रोटीन में होती है । मस्तिष्क के प्रत्येक न्यूरोन के लिये 10 ग्लिअल कोशिकाएं होती है जो न्यूरोनल आर्किटेक्चर मे मदद करती है । एक औसत न्यूरोन के लिये मानवीय मस्तिष्क मे 1000 से 10,000 के मध्य सिनेप्सिस होते है । सेरिबेलम के परकिन्जी कोशिकाओं मे और अधिक सिनेप्सिस हो सकते है । इस "मस्तिष्क" मे लगभग 10 ट्रिलियन "सूचनाओं की "बिट्स" होती है । यदि मनुष्य के मस्तिष्क में केवल एक सिनेप्स है तो उसमे दो मानसिक अवस्थाएं (मेन्टल स्टेट्स) उत्पन्न होती हैं । यदि दो सिनेप्स है तो $2^2 = 4$ मानसिक अवस्थाएं होगी

और यदि एक सिनेप्सेस हैं तो 2N मानसिक अवस्थाएं होंगी। यही वजह है कि मानव मस्तिष्क के इस अपरिमित, क्रियात्मक विभिन्न विन्यास (कान्फिग्यूरेशन) की वजह से, दो मनुष्य यहां तक कि आइडेन्टिकल टिवन्स भी बहुत भिन्न होते है। इसकी वजह से ही हमारे व्यवहार भिन्न-भिन्न होते है।

हमारे मस्तिष्क में इलेक्ट्रिकल माइक्रो सर्किट होते हैं। इसका आकार 1/10000 सेन्टीमीटर से भी कम होता है। इतना सूक्ष्म होने की वजह से ही ये अतिशीघ्र "डेटा प्रोसेसिंग" में सूक्ष्म होते हैं। एक सामान्य न्यूरोन को उत्तेजित करने के लिये माइक्रोसर्किट को करीब वाल्टेज का 1/100 भाग ही चाहिये। इसके कारण ही ये अत्यन्त सूक्ष्म प्रतिक्रिया (फाइनर एण्ड सट्ल रिस्पॉन्सेज) देते हैं। मानव के मस्तिष्क के व्यवहार की सघनता इन्ही माइक्रोसर्किट की संख्या पर निर्भर करती है।

मनुष्य में सूचना सग्रहित करने की अद्भुत क्षमता है। एक आधुनिक कम्प्यूटर मे कुल मिलाकर लगभग 10 लाख सूचनाएं प्रति क्यूबिक से. मी. सग्रहीत की जा सकती है जबकि मनुष्य का मस्तिष्क यदि 10^3 क्यूबिक से. मी. जितना बड़ा है तो इसमे लगभग $10^{13}/10^3 = 10^{10}$ सूचनाएं प्रति क्यूबिक सेंटीमीटर या लगभग 100 करोड़ सूचनाए प्रति क्यूबिक से. मी. संग्रहित हो सकती है।

किसी भी प्राणी की जटिलता का अन्दाज उसके व्यवहार से लगाया जा सकता है। व्यवहार से आशय प्राणी के द्वारा अपने सम्पूर्ण जीवन मे किये गये कुल कार्य का लेखा-जोखा। लेकिन यही जटिलता प्राणी के जेनेटिक पदार्थ की न्यूनतम सूचना की मात्रा द्वारा भी आकी जा सकती है। मानव गुणसूत्र में एक डी. एन. ए. होता है। एक डी. एन. ए. अणु में 5 बिलियन या पचास करोड़ के लगभग 'न्यूक्लिओटाइड' होते हैं। जीवन की भाषा इन्ही न्यूक्लिओटाइड द्वारा प्रदर्शित की जा सकती है। सूचनाओं की "बिट्स" कहलाती है जो कि बाइनेरी डिजिट्स का संक्षिप्त रूप है। यदि एक गुणसूत्र में 50 करोड़ (5×10^9) न्यूक्लिओटाइड हो तो इसमें लगभग 200 करोड़ (20×10^{10}) सूचनाओं की "बिट्स" होगी। यदि एक सामान्य पुस्तक के एक पेज पर 300 शब्द छपे हो तो गुणसूत्र की सूचनाएं 20 लाख पेज में समायेगी। और यदि किसी पुस्तक में 500 पृष्ठ हो तो एक गुणसूत्र की सूचनाओं के लिये 2000 के लगभग किताबे चाहिये।

आप इस बात से चिर-परिचित हैं कि गुणसूत्र "आनुवंशिकता" के वाहक हैं। ये आनुवंशिक गुण केवल माता-पिता के या दादा-परदादा के ही नहीं होते बल्कि इनसे पूर्व की पीढ़ियों के भी हो सकते हैं।

अतः व्यक्ति में गुणसूत्र के माध्यम से इन सम्बन्धियों के अनुभवों की स्मृतियां हस्तानान्तरित होती हैं। इनमें वे स्मृतियां भी शामिल होती हैं जो पूर्वजों के परिवेश की चेतना में जुड़ी होती हैं। ये सभी स्मृतियां व्यक्ति के 'आर' काम्प्लेक्स में चली जाती हैं या फ्रायडियन अचेतन मन में समाहित हो जाती हैं। ये स्मृतियां ही स्वप्न के रूप में उप-चेतन मन के माध्यम से उजागर होती हैं। इसे चेतना के स्तर तक सम्मोहन तकनीक या अन्य विधियों में लाया जा सकता है। हमारा उप-चेतन मन व्यापक ब्रह्माण्डीय चेतना के लगातार सम्पर्क में बना रहता है अतः 'क्लेअरवायेन्स' या परोक्ष-ज्ञान प्राप्ति सम्भव हो जाती है।

मन-प्रक्षेपण

यदि हम लिम्बिक सिस्टम के किसी जीन को किसी दूर प्रदेश में स्थित व्यक्ति के मस्तिष्क में प्रतिरोपित कर दें तो उस व्यक्ति के मन को जाना जा सकता है और स्वयं के मन को प्रक्षेपित किया जा सकता है। गुणसूत्रों पर जीन पाये जाते हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है प्रत्येक गुणसूत्र में 200 करोड़ सूचनायें समाहित होती हैं। यदि ऐसे किसी लिम्बिक सिस्टम के जीन को प्रक्षेपित किया जा सके तो परकायाप्रवेश भौतिक रूप से सम्भव है। अब 'जम्पिंग-जीन' की खोज की जा चुकी है। यद्यपि यह खोज केवल पौधों के स्तर तक ही हुई है, लेकिन यदि हम प्राणी के निम्न स्तर पर जायें तो पौधे तथा जन्तुओं में कोई विशेष अन्तर नहीं रह जाता। मस्तिष्क के किसी **'जीन'** को पृथक करना आज की मेडिकल साइन्स के लिये असम्भव है लेकिन जेनेटिक इन्जीनियरिंग की परिकल्पना के अनुसार भविष्य में इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। अब यदि इस पृथक जीन को दूर स्थित व्यक्ति के मस्तिष्क में प्रति रोपित कर दें तो स्वतः ही रेडियो सम्पर्क स्थापित हो जायेगा। कृत्रिम रूप से 'रेडियो-लिंक' करने की आवश्यकता नहीं होगी और दूसरे व्यक्ति के मन को जाना जा सकेगा। जैसा कि सम्मोहन की स्थिति में दो व्यक्तियों के सबजेक्टिव माइन्ड्स के बीच बिना किसी साधन के विचार सम्प्रेषण सम्भव होता है।

मन प्रक्षेपण की इसमें सरल तकनीक यह है कि जीन को क्यों नहीं कृत्रिम रूप से निर्मित किया जाय? यदि हमें मस्तिष्क के लिम्बिक सिस्टम

के किसी जीन का ज्ञान है तो इसकी प्रतिरूप कॉपी का निर्माण किया जा सकता है। लेकिन क्या मन के किसी जीन का ज्ञान सम्भव है? इसका उत्तर हमें **'कम्प्यूटर ग्राफिक्स'** से मिलेगा। **'कम्प्यूटर ग्राफिक्स'** की यह आश्चर्यजनक बात है कि इसमें यह क्षमता है कि यह द्विआयामी पेटर्न को त्रि-आयामी पेटर्न में **'प्रोजेक्ट'** कर सकता है या इसका उल्टा हो सकता है। कम्प्यूटर ग्राफिक्स जब विकसित हो जायेगी तो यह **'चतुर्विम'** वस्तुओं का त्रि-आयामी पिक्चर प्रस्तुत कर सकेगी।

कम्प्यूटर ग्राफिक्स में हमारी आंखों के समक्ष, कम्प्यूटर से सम्बन्धित टेलीविजन पर ज्यामितीय पेटर्न को तोड़ा-मोड़ा, घुमाया जा सकता है तथा एक नूतन-आयामी चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है।

कॉर्नेल यूनिवर्सिटी की आर्किटेक्चर स्कूल के डोनाल्ड ग्रीनबर्ग ने एक ऐसी ही प्रणाली विकसित की है। इस प्रणाली में नियमित रूप से छोड़ी गयी जगहों पर रेखायें खींची जाती हैं जिसे कम्प्यूटर "कन्टूर इन्टरवेल" के रूप में प्रदर्शित करता है। स्क्रीन पर निर्दिष्ट बिन्दुओं को हल्के पेन से स्पर्श करके हम त्रिविम (थ्री डाइमेंशनल) प्रतिबिम्बों को नियन्त्रित कर सकते हैं। इन्हें चाहे जैसे बड़ा या छोटा किया जा सकता है, चाहे जिस दिशा में खेंचा, घुमाया, तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। इससे द्विविम जगत की अनुभूति त्रिविम में हो सकती है। वे रोगी जिन्हें "आकाशीय" (स्पेस) अवगम का दोष होता है, वे त्रिविम जगत की द्विविम अनुभूति ही कर पाते हैं। कम्प्यूटर ग्राफिक्स से उन्हें दोषमुक्त किया जा सकता है। वे पुनः द्विविम जगत की अनुभूति त्रिविम में कर सकते हैं। कम्प्यूटर ग्राफिक्स के द्वारा मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों (सेरिब्रल हेमिस्फीअर) में सामंजस्य देखा जा सकता है। यदि कम्प्यूटर बायें गोलार्द्ध को चित्रित करता है तो इससे दायें गोलार्द्ध के क्रिया-कलाप अथवा पेटर्न स्वतः ही समझे जा सकेंगे।

केलिफोर्निया टेक्नालाजी की इन्स्टीट्यूट के विज्ञानी रोजर स्पैरी तो मस्तिष्क के बाये भाग की क्रियाओं को दायें भाग की क्रियाओं से पूर्णतया भिन्न मानते हैं। उनके **'स्प्लिट ब्रेन'** संकल्पना के अनुसार "अंतरदर्शी (इन्ट्यूटिव) क्रियायें दायें सेरिब्रल हेमिस्फीअर में होती हैं जबकि **'तर्कणा-परक'** (रैशनल) क्रियायें बायीं तरफ होती हैं। स्पैरी ने **'ग्रान्ड माल एपिलेप्सी'** के मामले में इस बात का निरीक्षण किया। यदि निओकोर्टेक्स का बायां भाग किसी दुर्घटना में क्षतिग्रस्थ हो जाता है, तो पढ़ने-लिखने तथा बोलने की क्षमता चली जाती है और यदि दायां सेरिब्रल हेमिस्फीअर क्षति-

ग्रस्त हो जाता है तो त्रिविम (थ्री डाइमेंशनल) दृष्टि, किसी पेटर्न को पहचानने की क्षमता, संगीत की क्षमता तथा "होलिस्टिक रेशनलाइजेशन" आदि की सामर्थ्य चली जाती है। पेटर्न के पहचानने से आशय यह है कि यदि दाया सेरिब्रल हेमिस्फीअर नष्ट हो जाता है तो व्यक्ति स्वयं का चेहरा भी दर्पण में नहीं पहचान पायेगा। इससे स्पष्ट है कि डाइमेंशन का सेन्स या अनुभूति मस्तिष्क के केवल दायें हेमिस्फीयर में होता है।

कम्प्यूटर ग्राफिक्स में इस डाइमेंशनल पेटर्न को तोड़ा-मरोड़ा जा सकेगा और चतुर्विम जगत की अनुभूति त्रिविम जगत में की जा सकेगी। चतुर्विम जगत का सम्बन्ध परा-मन या परा-मानसिक तत्व से है, क्योंकि परा-मन भी चतुर्विम की तरह आकाश (स्पेस) तथा समय (टाइम) से परे है। अतः इस बात में आश्चर्य नहीं होना चाहिये यदि हम कम्प्यूटर ग्राफिक्स की तकनीक से अतिन्द्रिय जगत को जान लें।

इस प्रकार कम्प्यूटर ग्राफिक्स से लिम्बिक सिस्टम के जीन की भावनाओं को जाना जा सकेगा या मन की भावनाओं को जाना जा सकेगा जो किसी 'जीन' में स्थित है। और अब मन के उस जीन को अलग करने की आवश्यकता नहीं होगी। वैसा का वैसा जीन (प्रतिरूप जीन) को परख नली में कृत्रिम रूप से सवर्धित (कल्चर्ड) या निर्मित किया जा सकेगा। जिस दिन हममें यह क्षमता पैदा हो जायेगी, हम कृत्रिम रूप से सम्बन्धित जीन को किसी दूसरे व्यक्ति में प्रतिरोपित कर सकेंगे। तब मन का प्रक्षेपण (माइण्ड स्वेप) स्वतः ही संभव हो जायेगा तथा हम दूरस्थ व्यक्ति के मन को जान लेंगे या परकाया-प्रवेश कर सकेंगे।

मन-प्रक्षेपण का एक और तरीका संभव है। इसके अनुसार यदि हम किसी प्रकार एक व्यक्ति के मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड के बीच "फीडबेक" लूप स्थापित करके उसका संबंध एक दूरस्थ व्यक्ति के इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर से स्थापित करदे जो कि पहले से ही उस व्यक्ति से सेट कर दिया गया है, तो दोनों व्यक्तियों में सम्पर्क रेडियो लिंक के माध्यम से हो जायेगा। जैसा कि स्पेनिश न्यूरो फिजियोलाजिस्ट जॉस डेलोगेडो ने किया। उन्होंने चिम्पेन्जी में इलेक्ट्रोडों के बीच फीड लूप जोड़ दिये तथा उसका संबंध दूर स्थित इलेक्ट्रानिक कम्प्यूटर से किया और यह देखा गया चिम्पेन्जी तथा दूर स्थित कम्प्यूटर के बीच रेडियो सम्पर्क बन जाता है।

अब इलेक्ट्रानिक कम्प्यूटर का लघुपन इस सीमा तक पहुँच गया है कि "फीडबेकलूप" को "हार्डवायर्ड" किया जा सकता है तथा दूरस्थित

कम्प्यूटर टर्मिनल के लिये रेडियोलिक की आवश्यकता नहीं रह गई है। उदाहरण के लिये अब यह सम्भव है कि एक ऐसा फीड बेक लूप स्थापित किया जा सकता है जिसके द्वारा एपिलेप्टिक साइजर (दौरा) प्रारम्भ होने से पूर्व ही इसके चिन्ह पहचाने जा सकते है तथा मस्तिष्क के केन्द्र स्वयं दौरा आने की स्थिति से पूर्व ही उसका निवारण कर सकता है।

निकट भविष्य में अभिग्राही (रिसिवर) कम्प्यूटर टर्मिल की भी आवश्यकता नही होगी। बिना किसी कम्प्यूटर टर्मिनल के केवल इलेक्ट्रोनिक हार्ड वायर्ड फीड बेक अभिग्राही लूप से ही दूर स्थित व्यक्तियों के मस्तिष्को के बीच सम्पर्क स्थापित किया जा सकेगा।

एपिलेप्टिक साइजर का संबध उपचेतन मन से है। जो कि लिम्बिक सिस्टम का प्रतिबिम्ब है। इसी प्रकार से जब "लिम्बिक सिस्टम" मे इलेक्ट्रोनिक हार्ड वायर्ड फीड बेक लूप स्थापित कर दिये जायें तथा उसका सम्पर्क दूर-स्थित व्यक्ति के लिम्बक सिस्टम से स्थापित हो जाये तो मन का ही प्रक्षेपण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में होगा।

ब्रेन वेव अथवा विचार-तरंग

विचार तरंग : सम्प्रेषण तथा ग्राह्यता—विचार और पदार्थ का परस्पर संबंध है, इसे **'क्वांटम-डाइनेमिक्स'** से सिद्ध किया जा सकता है। विचारों की न केवल कणीय प्रकृति होती है बल्कि तरग प्रकृति भी होती है। तभी तो रूस की महिला माइखलोवा केवल ध्यान से दूर स्थित किसी वस्तु को गतिमान कर देती है। उसे हाथ लगाने की या शरीर का इस्तेमाल करने की आवश्यकता नहीं होती। वैज्ञानिक डॉ. वार्मोलिएब और कामेनिएव ने एक यंत्र विकसित किया जिसमें माइखलोवा के आस-पास क्या घटित होता है, रिकार्ड हो जाता है। उन्होंने देखा कि जैसे माइखलोवा ध्यान केन्द्रित करती है, उसके आस-पास का आभामडल (ऑरा) धारा के रूप मे बहने लगती है। यह धारा लेसर या मिसोन की भांति संग्रहित होकर वस्तु को गतिमान कर देती है। रूसी विज्ञानियों का ख्याल है कि यदि इस प्राण ऊर्जा (बायो-प्लाज्मिक) को किसी यंत्र मे संग्रहित किया जाय तो व्यक्ति का मूल भाव उस यंत्र में भी बना रहता है। जैसा कि रूसी विज्ञानियों ने देखा है। माइखलोवा किसी वस्तु को हटा रही है तो आपका मन उस कमरे से भागने का करेगा, यदि वह वस्तु को खींच रही है (विचार तरंगों द्वारा) तो आपका मन उस यंत्र के नजदीक आने का करेगा। इससे स्पष्ट है कि विचार तरंग में भाव संग्रहित हो जाते हैं।

मन की ग्राह्यता पर डॉ. वासिलिएव ने अनेक प्रयोग किये। वासिलिएव के प्रयोग को 'आर्टिफीशियल रीइनकार्नेशन' कहते हैं। वासिलिएव ने एक व्यक्ति को निरन्तर 30 दिन तक सम्मोहन की स्थिति में रखा। इलेक्ट्रोन एनसिफलोग्राफ (ई. ई. जी.) से "आल्फावेव" प्रारम्भ हो गई। तीस दिन तक, आल्फावेव की स्थिति में उसे निर्देश दिये गये कि वह पूर्व जन्म का कोई और है। 30 दिन के भीतर वह साधारण चित्रकार से असाधारण चित्रकार बन गया। वासिलिएव ने निकोलिएव पर प्रयोग किये। निकोलियेएव में यह अद्भुत क्षमता थी कि वह दो हजार मील दूर से भेजे गये विचारों को भी पकड लेता था। आल्फावेव के प्रारम्भ होने के साथ ही वह दो हजार मील दूर से प्रेषित विचारों को पकडने लगता था, लेकिन इसके लिये उसका "रिसेप्टिव" होना जरूरी था।

वासिलिएव ने चूहों पर भी प्रयोग किये। उसने एक ऐसा मादा चूहिया चुनी, जिसके आठ बच्चे थे। मां (मादा चूहे) को समुद्र के ऊपर रखा गया जबकि उसके बच्चों को समुद्र की गहराई में, हजारों फेदम नीचे, पनडुब्बी में ले जाया गया, जिसमें कुछ वैज्ञानिक भी प्रयोग करने के लिये उपस्थित थे। कुछ वैज्ञानिक ऊपर थे। ऊपर मादा चूहे के या मां की खोपड़ी में इलेक्ट्रोड फिट कर ई. ई. जी. से जोड़ दिये गये। ई. ई. जी. मादा चूहे के मस्तिष्क में चलने वाली वेव्ज (ब्रेन वेव) को अंकित करती थी। नीचे पनडुब्बी में एक-एक करके सभी चूहे के बच्चों को थोड़े-थोडे समयान्तराल में मारा गया। वासिलिएव ने देखा कि जिस क्षण नीचे चूहिया के बच्चे मारे गये, उसकी मा ने उसी क्षण ऊपर विद्युतीय धक्के महसूस किये। इससे वासिलिएव ने सिद्ध किया कि जन्तुओं में भी टेलिपैथी एक सहज घटना है।

अत: हमने देखा कि योगियों में ध्यान के समय मस्तिष्क से 'आल्फा' वेव निकलती है, जैसा कि ध्यान के समय साइखलोवा में, या निकोलियेव में मन की रिसेप्टिविटी के समय। तो यह "ब्रेन वेव" क्या है, इस ब्रेन वेव्ज के द्वारा मन का प्रक्षेपण किस प्रकार होता है?" इसके लिये हमें न्यूरोन के विद्युतीय पेटर्न को समझना होगा।

ब्रेन वेव्ज न्यूरोन :

हम जानते है कि प्राणियों में न्यूरोन ही प्रमुख तौर पर विद्युत का संचालन करते हैं (इलेक्ट्रोकेमिकल स्वरुप में)। न्यूरोन के स्वान कोशिकाओं से विद्युत उत्पन्न होती है और इम्पलसेज बनते हैं। न्यूरोन के भीतर पोटेशियम आयन बाहर की ओर आते है तथा सोडियम आयन भीतर जाते है, इसे पर्त

का 'डी पोलेराइजेशन' भी कहते हैं। लेकिन मस्तिष्क के न्यूरोन में सोडियम या पोटेशियम आयन नहीं होते, फिर भी वहां इम्पलसेज बनते हैं। जैसे-जैसे इम्पलसेज आगे बढ़ते हैं, न्यूरोन की परत का 'डीपोलेराइजेशन' हो जाता है। विद्युत इन्हीं इम्पलसेज के रूप में एक न्यूरोन से दूसरे न्यूरोन में संवाहित होती है। जब इम्पलसेज को ई. ई. जी. के द्वारा रिकार्ड किया जाता है, तो ये तरंग के रूप में प्रकट होते हैं, इसे ही 'ब्रेन वेव्ज' कहा जाता है। ब्रेन वेव्ज का लाभ यह है कि इसका उपयोग बिना किसी व्यक्ति को जगाये भी किया जा सकता है, इससे ई. ई. जी. निद्रा की गहराई का एक प्रामाणिक मापक हो गया है। ई. ई. जी. उन लाखों 'नर्वसेल्स' की इलेक्ट्रिकल एक्टिविटी में मन्द परिवर्तन का रिकार्ड है, जो मस्तिष्क में एक साथ कार्य करते हैं। नर्व की इलेक्ट्रिकल एक्टिविटी के उपयुक्त परिवर्धन (एम्प्लीफिकेशन) से ई. ई. जी. को मस्तिष्क में इलेक्ट्रोन फिट करके रिकार्ड किया जा सकता है। ब्रेन वेव्ज—जिसे ई. ई. जी. द्वारा रिकार्ड किया जाता है, नर्व की इलेक्ट्रिकल एक्टिविटी के उतार चढ़ाव से तरंग बनती है—ब्रेन वेव्ज, वोल्टेज में बहुत ही कम परिवर्तन की होती है। (वोल्ट के लाखवें भाग में)। वेव्ज की आवृत्ति-वोल्टेज में प्रति सैकिन्ड परिवर्तन—हर्ट्ज में अभिव्यक्त की जाती है। अतः ई. ई. जी. में आवृत्ति का पराग 1 से 50 हर्ट्ज होता है। इसी आवृत्ति के आधार पर ब्रेन-वेव्ज को आल्फा, बीटा, गामा, थीटा तथा डेल्टा आदि भागों में विभक्त किया गया है। आल्फा की आवृत्ति 8 से 12 हर्ट्ज (एच जेड़) होती है। 4 से 7 हर्ट्ज तक की ब्रेन वेव्ज 'थीटा वेव' कहलाती है। एक से तीन हर्ट्ज की सीमा की ब्रेन-वेव 'डेल्टा-वेव्ज' कहलाती है। 13 से 25 तक की वेव्ज "बीटा वेव्ज" कहलाती है। उत्तेजित अवस्था में फ्रिक्वेन्सी ज्यादा होती है जबकि वोल्टेज कम होता है। निद्रा से पूर्व की शिथिल अवस्था (रिलेक्स) को ब्रेन-वेव की 'एल्फा' फ्रिक्वेन्सी से दर्शाया जा सकता है।

स्वप्न को तीसरी अवस्था कहा गया है। पहली दो अवस्था जागृत तथा निद्रा होती है। स्वप्न को मेडिकल साइंस में 'पेरेडोक्सिकल स्लीप' कहते हैं। क्योंकि इसमें ब्रेन-वेव का पेटर्न निम्न वोल्टेज तथा उच्च फ्रिक्वेन्सी का चलता है जो जागृत अवस्था के ब्रेन-वेव पेटर्न जैसा है। लेकिन व्यक्ति गहरी तंद्रा में होता है, जैसा कि उसे जागृत करने के लिये स्टिम्युलेशन की तीव्रता की आवश्यकता के अनुसार देखा गया है। पेरेडोक्सिकल-स्लीप को 'रेपिड आई मूवमेंट स्लीप' भी कहा जाता है। निद्रा तथा जागरण मस्तिष्क के 'रेटिक्यूलर एक्टाइवेटिंग सिस्टम' द्वारा नियन्त्रित किये जाते हैं। यदि यह

सिस्टम क्षतिग्रस्त हो जाये तो व्यक्ति लगातार निद्रा में बना रहता है और इसका अन्त अचेतना में होता है।

अब प्रश्न यह है कि योग में ब्रेन वेव का पेटर्न कैसा होगा ?

योग एक स्थिति है जिसमें व्यक्ति भीतरी रूप से शान्तचित्त होता है तथा चेतना की उच्च स्थिति में होता है। इस समय ब्रेन वेव पेटर्न शिथिलन (रिलेक्सेशन) का होता है। योग में हृदयगति तथा श्वसन गति मन्द हो जाती है, शरीर द्वारा आक्सीजन का उपभोग कम हो जाता है। त्वचा का मन्द इलेक्ट्रिकल करेन्ट के प्रति प्रतिरोध बढ़ जाता है (रिलेक्सेसन का संकेत) तथा मांसपेशियों मे रक्त प्रवाह की गति बढ़ जाती है। योग में शिथिलन का ब्रेन-वेव पेटर्न बनने से आशय है कि रिद्मिक फ्रिक्वेन्सी मन्द हो जाती है।

योग मे ब्रेन की स्वत. क्रिया 8 से 12 हर्ट्ज के परास में होती है (अल्फा फ्रिक्वेन्सी) और कभी कभी ब्रेन वेव फ्रिक्वेन्सी की यह रेंज और भी कम हो जाती है—थीटा रेंज में (4 से 7 हर्ट्ज)। इसके अतिरिक्त रक्त मे लेक्टिक अम्ल की मात्रा काफी गिर जाती है। लेक्टिक एसिड मांसपेशियों मे उपापचय क्रिया द्वारा बनता है, जो आक्सीजन का उपयोग नही करती।

यदि हम इन ब्रेन वेव्ज को शरीर से बाहर भेज सकें, 'ऊर्जा के सरक्षण के नियम' को ध्यान में रखते हुए, तो मन का प्रक्षेपण एक व्यक्ति से हजारो मील दूर स्थित दूसरे व्यक्ति मे हो सकता है। यदि इसी ब्रेन वेव्ज को लेसर की भांति सग्रहित रखा जा सके या मोडुलित किया जा सके तो इसे एक ग्रह से दूसरे ग्रह, या एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र या अनन्त दूरी तक भेजा जा सकता है। दूरस्थ मस्तिष्क का अभिग्राही (रिसेप्टिव) एनेलाइजिंग एव डिटेक्टर कम्प्यूटर संवेदित होने पर स्वतः ही प्रेषित मन को जान पायेगा। मस्तिष्क के लिम्बिक सिस्टम में हार्डवायर लूप स्थापित करके भी मन का प्रक्षेपण किया जा सकता है जैसा कि पहले बताया जा चुका है।

अब प्रश्न यह है कि उपरोक्त जैव—भौतिक विधि से मन को क्षणाश मे ही एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र या एक ग्रह से दूसरे ग्रह पर कैसे भेजा जा सकता है। मन की गति को अनन्त बताया गया है। यह गति अनन्त कैसे हो जाती होगी। इसके लिये हमें "स्पेस" की धारणाओं को समझना होगा।

यह विचार कि अंतरिक्ष स्थिर, निश्चर तथा निरपेक्ष है, इस पर मूर्धन्य वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने करारा प्रहार किया था। लेकिन आइन्स्टाइन की थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी से पूर्व भी क्लासिकल या **'यूक्लिडियन' स्पेस** पर कई फिलोसोफर तथा गणितज्ञों ने प्रहार किया था (प्रमुखतया निकोलाई

इवानोविच लोवाचेवस्की (1793–1856 द्वारा)। "स्पेस" के गुण उन धारणाओं से जटिल हैं जो कि रेखा गणित मे सिखाये जाते है। यह यूक्लिड के अभिग्रहीत (एक्सिअम) को नकारता है यानि स्पेस के तीन से अधिक विम (डाइमेंशन) हो सकते है—चतुर्विम या एन-विम। हम नही सोच सकते है कि "मल्टी डाइमेंशनल यूक्लिडियन स्पेस, हमारे चिर-परिचित त्रिविम जगत् मे शोर्टकट या छोटे रास्ते के लिये अनुमति देता हो। दो बिन्दुओं का 3—स्पेस में विभाजन किसी उच्च स्पेस के विभाजन से ही संभव है। लेकिन यदि हम यह सोचें कि स्पेस को मोड़ा या वक्र किया (कर्वड) जा सकता है ताकि यूक्लिड की एक्सिअम को काम में नहीं लेना पड़े तो कुछ जटिल सभावनाएं अभिव्यक्त की जा सकती हैं।

आप मोबिअस पट्टी के बारे में विचार करें—आप इसके एक सिरे को दूसरे पर ले जायें या इसे अर्द्ध घुमाव दें तो इसका परिणाम एक तरफा सतह होगी। एक पेपर के दो सिरो को अंगूठे तथा तर्जनी के बीच रखकर भी इसे देखा जा सकता है। पेंसिल द्वारा पेपर पर आपके अंगूठे तथा तर्जनी के बीच लगातार रेखा खींचिये। यदि आप केवल स्ट्रिप की सतह पर यात्रा करेंगे तो तय की गई दूरी अत्याधिक होगी और यदि आप पेपर की मोटाई में से जा सकें, आपकी तर्जनी एवं अंगूठे के बीच की सीधी रेखा से तो तय की गई दूरी बहुत कम होगी। दस इन्च के बजाय यह दूरी एक इन्च का हजार वां भाग होगी।

इस सरल से प्रयोग बहुत जटिल सम्भावनायें अभिव्यक्त की गई है। यदि स्पेस मे दो प्वाइंट 'ए' तथा 'बी' एक दिशा में बहुत दूरी पर है तो ये बिन्दु ही दूसरी दिशा मे बहुत समीप होगे। स्पेस की ज्यामिति परिवर्तनीय है जो कि यूक्लिड के जमाने में "एक एब्सर्ड" विचार था। स्पेस को गुरुत्वीय क्षेत्र (ग्रेविटेशनल फील्ड) द्वारा बदला जा सकता है। एक दिन हम "फील्ड ऑफ फोर्स को नियन्त्रित कर सकेंगे तथा स्पेस की बनावट को "प्रेट्जेल" आकार की गाठो मे बदल सकेंगे। जो कि "मोबिअस स्ट्रिप" से अधिक प्रभावशाली है। विज्ञान कथाओं के "स्पेस-वार्प" ([illegible]) का विचार भी पूर्णत: "फेन्टेसी" नही है। एक दिन ये हमारे सामान्य जीवन के एक अंश होंगे। एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप की यात्रा करना ठीक उसी प्रकार से आसान होगा जैसे एक कमरे से दूसरे कमरे में जाना। यह कहना कठिन है कि मन को गति इस लिये तीव्र दिखाई पड़ती है कि वह बहुत सूक्ष्म होता है या इसलिये कि "स्पेस वार्प" होता होगा। लेकिन इस सम्भावना से इन्कार नही किया जा सकता।

सूक्ष्म शरीर प्रक्षेपण (एस्ट्रल प्रोजेक्शन)

सूक्ष्म शरीर प्रक्षेपण के अनेक प्रयोग वैज्ञानिकों के समक्ष किये गये, इसकी अनेक मिसालें दी जा सकती हैं। परा मनोविज्ञान ने इसकी तह मे जाने का प्रयास किया है। परा मनोविज्ञानिको के अनुसार ई. एस. पी. प्रोजेक्शन (एक्स्ट्रा सेन्सरी परसेप्सन) या साइकिक प्रोजेक्शन के ठोस वैज्ञानिक आधार हैं, इसे वे लोग एस्ट्रल प्रोजेक्शन भी कहते है।

इसकी थ्योरी यह है कि हमारा शरीर दो प्रकार का होता है, एक प्रकृत भौतिक शरीर जिससे कि हम चिर परिचित हैं तथा दूसरा "साइकिक शरीर" जिसे "साइकिक डबल" भी कहते हैं। जिससे आशय है हूबहू पहले का दोहरा (डुप्लीकेट) शरीर होना। उनके अनुसार यह "साइकिक डबल" या दोहरा शरीर तनुकृत पदार्थ का बना है। खास तौर से इलेक्ट्रोन का-इलेक्ट्रोन जो कि सघन भौतिक शरीर के अपेक्षाकृत उच्च आवृत्ति से गमन करते है।

परा मनोविज्ञान सिद्धान्त के अनुसार "साइकिक डबल" अस्थाई तौर पर भौतिक शरीर से पृथक हो जाता है, खास तौर से निद्रा में, भाव समाधि (ट्रान्स) में या कभी-कभी बीमारी की दुर्बलता मे, तथा शरीर से बाहर गमन करता हुआ इसके भौतिक शरीर के चारों ओर रहता है। इस प्रकार का असाधारण भ्रमण या तो व्यक्ति की दृष्टि मे अचेतन रहता है (साइकिक सामनैमब्यूलिज्म) या भ्रमण इच्छा शक्ति के बल पर होता है।

एक ऐसे समय में साइकिक डबल, परम्परागत "सिल्वर कार्ड" द्वारा भौतिक-शरीर से जुड़ा रहता है। यदि यह कार्ड टूट जाती है तो व्यक्ति अपने भौतिक शरीर में नही लौट सकता है—वह मृत होता है। "सिल्वर कार्ड" का वर्णन बाइबिल में भी मिलता है। (इक्लीजिऐस्टस XIII, 6)

बाइबिल कहती है—"द सिल्वर कोर्ड बी लूजन्ड"। ओल्ड हाइम कहती है—"सम डे द कोर्ड विल ब्रेक।"

प्रसिद्ध ट्रांस मीडियम मिसेज लेनोर पाइप्स चेतना में लौटते हुए बुदबुदाती है—"मैं एक कोर्ड पर आई— ए सिल्वर कोर्ड।"

साइकिक प्रोजेक्शन के अनेक उदाहरण हमें इतिहास में भरे मिलेंगे।

बहुत से कैथोलिक संत के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने अनुभव किया है "बाइलोकेशन" का—एक समय मे दो स्थानों पर उपस्थित होना। यह "बाइलोकेशन" का सीधा सम्बन्ध "साइकिक डबल" से होना दर्शाता है। साइकिक रिसर्च सोसाइटीज के पास ऐसे अनेक रिकार्ड मिलेंगे जो व्यक्ति के भौतिक शरीर से बाहर गमन करने के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

यह फिनोमिना या तथ्य "आटोस्कोपी" द्वारा भी अभिव्यक्त किया जाता है। ओटोस्कोपी से आशय है—स्वयं को विना किसी दर्पण के देखना। इस प्रकार का अलौकिक अनुभव लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्तियों जैसे कि अरनेस्ट मेक एक आस्ट्रिअन फिजिसिस्ट तथा सिगमन्ड फायड—साइकोएनेलिसिस तकनीक का पिता—आदि मे किया। ओटोस्कोपी में व्यक्ति स्वयं के प्रक्षेपित तथा प्रतिबिम्बित शरीर को देखता है।

क्या "साइकिक डबल" का प्रक्षेपण केवल ओटोस्कोपी हैं ?

साइकोएनेलिस्ट नेन्डर फोडर ऐसा नहीं सोचते हैं। उनका कहना है कि व्यक्ति परक ढंग से भी यह संभव है कि फेन्टेसी अनुभवों तथा विशुद्ध (जेन्यूइन) साइकिक डबल में भेद किया जा सकता है। फेन्टेसी अनुभव (स्वैर कल्पना) यह दर्शाते है कि चेतना का केन्द्र (सेंटर ऑफ कॉन्समनेस) भौतिक शरीर में है, तात्पर्य यह है कि व्यक्ति यह जानता है कि वह बिस्तर पर लेटा हुआ अपने शरीर के चारों ओर के तैरते "साइकिक डबल" की ओर दृष्टिपात कर रहा है। लेकिन साइकिक रिसर्च मे सबसे अधिक मान्य तथ्य ठीक इसके विपरीत है—इसके अनुसार चेतना का केन्द्र भौतिक शरीर मे नही है बल्कि उस साइकिक डबल में है जो इससे पृथक होता है।

कुछ रिसर्चर्स के अनुसार "साइकिक डबल" मात्र टेलिपैथिक हैल्यूसिनेशन मात्र है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति "साइकिक डबल" को नहीं देखता है बल्कि एक ऐसे विचार प्रतिबिम्ब (थोट इमेज) को देखता है जो किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा उसके दिमाग मे प्रेषित किये जाते है।

यद्यपि यह "हेल्यूसिनेरी थ्योरी" कुछ भ्रमित "साइकिक डबल्स" की व्याख्या करती है लेकिन जेन्यूइन साइकिक डबल की व्याख्या नहीं कर पाती।

जेन्यूइन साइकिक डबल की ये घटनाएं क्या सिद्ध करती है?

सन् 13 जनवरी, 1865

कनाडा की ब्रिटिश कोलम्बिया विधान सभा का अधिवेशन विक्टोरिया नगर में हो रहा था। विधान सभा के एक सदस्य चार्ल्स वुड उस समय रुग्णावस्था में अपने घर पर बिस्तर में पड़े थे—डॉक्टरों ने उनके बचने की आशा छोड़ दी थी लेकिन वुड का "साइकिक डबल" उस समय विधान सभा में भी उपस्थित था। साक्षी है वह ग्रुप फोटो, जो अधिवेशन की समाप्ति पर लिया गया और जिसमें विधान सभा में भाग लेने वाले सभी सदस्य उपस्थित थे। यह चित्र आज भी विधान सभा के हाल में टंगा है। सवाल यह है कि किसी व्यक्ति के चेहरे का फोटोग्राफ कैसे आ सकता है जो कि फोटो खींचते समय अनुपस्थित हो। क्या केमरा "साइकिक डबल" का फोटो खींचने में सक्षम है? क्या कैमरा "विचार-प्रतिबिम्ब" (थॉट इमेज) को कैद कर सकता है?

चार्ल्स वुड के रिप्लिका से यह स्पष्ट है कि फोटोग्राफ स्पष्ट रूप में रिप्लिका के प्रकाश को रिफरेक्टिंग करने में सक्षम है दूसरे शब्दों में साइकिक डबल के पारदर्शी, इथरिअल, अति सूक्ष्म पदार्थ को भी कैमरा पकड़ लेता है। और यह इथरिअल पदार्थ फोटोग्राफ के रूप में प्रकट हो जाता है।

इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति के चारों ओर "औरा" (परिमण्डल) होता है। आधुनिक ओरा रिसर्च सन् 1920 से प्रारम्भ हुई जब सेंट थोमस होस्पिटल लन्दन के डॉ. वाल्टर किलनर ने शरीर से एक विचित्र निस्सरण का पता लगाया जो कि व्यक्तिगत स्वास्थ्य से संबंधित है। उसने रासायनिक तरीके से एक पर्दा तैयार किया जो "किलनर स्क्रीन" कहलाता है। किलनर स्क्रीन से व्यक्ति के "औरिक फील्ड फोर्स" को देखा जा सकता है। हेवलोक एलिस, साइकोलॉजी ऑफ सेक्स के ख्याति प्राप्त लेखक, ने स्क्रीन से औरा देखने के बात की पुष्टि की।

शरीर के "औरा" पर या सूक्ष्म शरीर या साइकिक डबल पर वैज्ञानिक प्रयोग करने के सम्बन्ध में सोवियत रूस के एक इलेक्ट्रोनिक विशेषज्ञ

सेमयोन किलियान ने विश्व व्यापी ख्याति अर्जित की। उन्होंने अपनी वैज्ञानिक पत्नी—वेलेन्टिना के सहयोग से फोटोग्राफी की एक विशेष विधि का आविष्कार किया जिससे कि सजीव प्राणियों—पौधों और जन्तुओं के समीप होने वाले सूक्ष्म विद्युतीय गतिविधियों का सफल छायांकन किया जा सकता है। इन सूक्ष्म विद्युतीय गतिविधियों को वैज्ञानिक किलियान ने "ऑरिक फील्ड फोर्स" माना है। इस विधि में एक ताजा पत्ती तोड़ी गई। तुरन्त उसका फोटोग्राफ खींचा गया। वैज्ञानिक उस समय आश्चर्य चकित रह गये जब उन्होंने पत्ती के सानिध्य में अदभुत विद्युतीय पेटर्न देखा। पहले चित्र में स्फुलिंगो, और स्फुरणों आदि के प्रभामण्डल दृष्टिगोचर हुए। पत्ती के चारों ओर के ये प्रभा मंडल प्रत्येक दस घंटे में क्षीण होने लगते थे। अगले दस घंटों में तो ये प्रभामंडल विलुप्त ही गये। इससे यह समझा गया कि पत्ती की मृत्यु हो गई।

किलियान फोटोग्राफिक विधि द्वारा मानव शरीर के विभिन्न अंगो के भी चित्र खीचे गये। इन फोटोग्राफ्स मे आमाशय, हृदय, गर्दन आदि अवयवों पर विभिन्न रंगो के अत्यन्त सूक्ष्म धब्बे दृष्टिगोचर हुए। ये अवयव से विसर्जित होने वाली विद्युत पेटर्न की सामर्थ्य को दर्शाते थे। ये विद्युतीय पेटर्न इस बात का स्पष्ट संकेत दे रहे थे कि प्रत्येक प्राणी का दो प्रकार का शरीर होता है—पहला प्रकृत या भौतिक शरीर और दूसरा सूक्ष्म शरीर या साइकिक डबल। विज्ञानियो के अनुसार सूक्ष्म शरीर के इलेक्ट्रोन भौतिक शरीर के इलेक्ट्रोन की अपेक्षा अधिक गतिमान होते हैं। उनके अनुसार "साइकिक डबल" अस्थायी तौर पर भौतिक शरीर से पृथक होकर कहीं भी विचरण कर सकता है।

विज्ञानी किलियान की "हाइ फ्रक्वेंसी" फोटोग्राफी का ही यह कमाल था कि "ओरिक फोर्स फील्ड" का चित्र खींचा जा सका। यह भी आश्चर्य की बात थी कि विचारों या मनोभावों के अनुरूप ये "ओरिक फोर्स फील्ड" थे। यदि भावनाएं शुद्ध है तो विद्युतीय पेटर्न संगीतमय ध्वनि की तरह रिद्मिक या लयबद्ध होते हैं और यदि भावनाएं अशुद्ध हैं तो विद्युतीय पेटर्न शोर की तरह अराजक होता है।

तीस वर्षों तक इस दिशा में निरन्तर प्रयोग करने के परिणाम स्वरूप विज्ञानी किलियान इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रत्येक प्राणी अपने चारों ओर एक आभा लिये चलता है। इसे "इलेक्ट्रोडायनेमिक फील्ड" कह सकते हैं।

यह देखा गया है कि जब किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है तो आभा-मंडल को विसर्जन होने मे तीन दिन लगते है। तीन दिन तक मृत व्यक्ति के शरीर से ऊर्जा के गुच्छे निकलते है। तीसरे दिन ये गुच्छे लगभग समाप्त हो जाते है। इन गुच्छो के समाप्त होने पर व्यक्ति को पूर्ण मृत मानना चाहिये। वैज्ञानिको का ऐसा मानना है कि इस ऊर्जा को पुनरुज्जीवित करने की कोई विधि एक न एक दिन खोजी जा सकेगी। इस ऊर्जा के शरीर से बाहर निकलने मे वजन कम नही होता यानी गुरुत्व का इस पर कोई असर नही होता।

योग का कहना है कि अनाहत चक्र, जो कि कार्डियक प्लेक्सस के समकक्ष होता है, के सक्रिय होने पर गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव कम हो जाता है। अनाहत चक्र के सक्रिय होने पर व्यक्ति अपने शरीर से बाहर होता है। वस्तुतः वह उस व्यक्ति की प्राण ऊर्जा या बायोप्लाज्मिक इनर्जी होती है। योग के अनुसार उस ऊर्जा के जग जाने पर एक नई ऊर्जा भर जाती है, एक नया उत्ताप जो बहुत शीतल होता है।

हमारे शरीर मे भी धन विद्युत ऊर्जा का वर्तुल है, यदि उसमें कही टूटन पैदा हो जाय तो समीप खड़े दूसरे व्यक्ति को शॉक लगना प्रारम्भ हो जायेगा।

योगी भौतिक शरीर के बजाय सूक्ष्म शरीर या ऊर्जा शरीर, इनर्जी बाडी से काम लेता है। योग ने जिन चक्रो की बात कही है वे शरीर में कहीं नहीं है वे उस उर्जा शरीर मे है। इस भौतिक शरीर मे ऐसे स्थान है जो उन ऊर्जा शरीर के बिन्दुओ के समकक्ष है, या उससे करस्पाड करते हैं, लेकिन वे चक्र नही।

आक्युपक्चर विधि जिसे कि मेडिकल साइन्स ने मान्यता दी है, के अनुसार शरीर में कोई 700 बिन्दु पाये गये है। शरीर के बिन्दु "ऊर्जा शरीर" से स्पर्श करते है। रूस के एक विज्ञानी एडमेर्को ने एक ऐसी मशीन निर्मित की है, जिसके भीतर एक व्यक्ति को खड़ा कर दिया जाता है।

यह पाया गया कि 700 बल्ब जल जाते है। ये 700 बल्ब मशीन के बाहर लगे होते है। बाहर की ओर हजारो बल्ब लगे होते है लेकिन जलते केवल 700 ही है। जहा-जहा से व्यक्ति की प्राण ऊर्जा सवेदनशील है, वही से मशीन के बल्ब जल उठते है। योग मे केवल सात चक्र होते है, न कि 700 बिन्दु। वास्तव में लगभग 100 बिन्दुओ के लिये चक्र के रूप में एक केन्द्र होता है। ये 100 बिन्दु चक्र की परिधि पर होते है। यदि इन सात

केन्द्रों को ही स्पर्श कर लिया जाय तो सात सौ बिन्दुओं को स्पर्श करने के समान हो जाता है। योगासन में भी आपके शरीर में किन्हीं-किन्हीं विशेष बिन्दुओं पर दबाव डाला जाता है। लगातार दबाव से वहा की ऊर्जा सक्रिय हो जाती है, और विपरीत दबाव से दूसरे केन्द्रों की ऊर्जा खींच ली जाती है।

वैज्ञानिको की नवीन पद्धति आक्युपक्चर (सूई भेदन चिकित्सा पद्धति) में प्राण-प्रवाहिनियो को 'मेरीडियन्स' कहते हैं। ये मेरीडियन्स साइकिक ड्वल या सूक्ष्म शरीर और भौतिक शरीर के बीच कड़ी है। वैज्ञानिको ने औसत मनुष्य के और योगी के मेरिडियन्स की स्थिति का माप किया। उसे सामान्य मनुष्य की अपेक्षाकृत अधिक तीव्र गति से इन्द्रिय जन्य ज्ञान होता है। जैसे— एक्स्ट्रा सेंसरी परसेप्शन। उन्होंने पाया कि जिनका सूक्ष्म शरीर जागृत रहता है और चक्र जाग जाते है, उनकी ऊर्जा के संचार और वितरण प्रणाली अन्य लोगों से भिन्न थी।

उनका परिवर्तन का क्रम विचित्र था। पहले मेरिडियन में परिवर्तन हुआ और फिर भौतिक शरीर मे उनके अनुरूप परिवर्तन हुआ। इससे सिद्ध होता है कि भौतिक शरीर मे परिवर्तन नाड़ियो और मेरिडियन के द्वारा होता है। और मेरिडियन के परिवर्तित कार्यो से धीरे-धीरे शरीर के अन्य अवयवों में परिवर्तन होता है। ये परिवर्तन नाड़ी व मेरिडियन के हाथ में होना है। वैज्ञानिकों ने देखा कि योगियो के क्रिया-कलाप की जो सीमा थी वह परा-स्नायविक संस्थान द्वारा परिचालित थी। उनके चक्र जागृत थे।

जापान में परा-मनो वैज्ञानिक एवं धर्म संस्थान के प्रधान डॉ. हिरोशी मोटोयामा ने शरीर की महत्वपूर्ण ऊर्जा की माप के लिये विभिन्न यन्त्रों का आविष्कार किया है। उनमें से पहला उपकरण धाराओं का काम एवं उससे सम्बन्धित शरीर के विभिन्न भागों का अध्ययन करता है। इसका एक सर्व-मान्य मूल्य जानने के लिये उन्होंने दो हजार आदमियों के ऊपर प्रयोग किये। इस उपकरण की सहायता से वे रोग उत्पन्न होने से पहले लक्षण जान सकते है तथा इसके अनुसार लोगों को सावधान रहने के लिये भी बता देते है। जापान में कई अस्पताल इस विधि के प्रयोग द्वारा रोगियों को विभिन्न श्रेणियों में बाटते हैं, तथा इस प्रयोग द्वारा जाने गये परिणाम से, जीवाणु प्रयोगशालाओं द्वारा पाये गये नतीजे से तुलना करते है। डॉ. मोटोयामा ने "चक्र" नामक एक और मशीन का निर्माण किया है। यह यंत्र महाबंध मे श्वास रोकने, आज्ञाचक्र पेट एवं ग्रन्थियों को सिकुड़ने यानी प्राणायाम करते-

यंत्र उस मनुष्य की रीढ़ की हड्डी के विभिन्न चक्रों में कैसी तरंगे उठती है, उनको नापता है। रीढ़ की हड्डी के सबसे नीचे वाला भाग मूलाधार चक्र कहलाता है जो सबसे प्रधान चक्र है। जब यह चक्र जागृत हो जाता है तो ऊर्जा का प्रवाह मस्तिष्क के सबसे ऊपरी भाग तक होने लगता है। डॉ. मोटोयामा ने यह प्रमाणित कर दिया है कि उन व्यक्तियों के चक्रों में उठने वाली तरंगों को इन मशीनों द्वारा निबन्धित किया जा सकता है जो बहुत वर्षों से योग साधना कर रहे है और जिनमे सूक्ष्म शक्ति जागृत हो चुकी है।

सूक्ष्म शरीर के इन चक्रों को वैज्ञानिक स्वरूप देने का प्रयत्न किया गया है। शरीर विज्ञान के आधार पर मूलाधार को "पेल्विक सेक्रल" प्लक्सेस, मणिपूरित को 'सोलर प्लक्सेस', अनाहत को 'कार्डियक' प्लक्सेस, विशुद्धि चक्र को 'फेरेन्जियल प्लक्सेस', आज्ञा चक्र 'पिनियल-पिटिट्यूरी एक्सिस' तथा सहस्त्रार को, 'रेटिक्युलर एक्टाइवेटिंग सिस्टम' रूपी थेलेमस से उत्सर्जित विद्युत फव्वारे के समकक्ष अब वैज्ञानिकों ने मान लिया है। वस्तुत ये उनके समीपस्थ भर है—स्थूल रूप में विद्यमान प्लक्सेस नाडी के गुच्छक नही है।

सुषुम्ना को वैज्ञानिक स्थायी विद्युतीय द्विध्रुव केन्द्र (परमानेंट इलेक्ट्रिक डाइपोल) मानते है। इसका निचला भाग जो मूलधार चक्र मे अवस्थित है, (कॉडा इक्वाइना स्थित) ऋण विद्युत आवेश युक्त है, तथा ऊपरी सिरा सहस्त्रार (सेरिब्रम स्थित) धन विद्युत धारी है। असामान्य स्थिति मे यह प्रवाह नीचे से प्रवाहित होकर उल्टी दिशा मे अर्थात् ऊर्ध्वगमन करता रह सकता है, व मस्तिष्क को सतत् जागृत व अति सामर्थ्यवान बनाये रख सकता है—वैसे सामान्यत. जीवधारियों मे इसका प्रवाह ऊपर से नीचे होता है। मनुष्य मात्र को यह सुविधा प्राप्त है कि वह-प्राण प्रहार-विद्युत केन्द्रीकरण के माध्यम से लोअर पोल को सशक्त बनाकर अपने प्रवाह को क्षरण से रोककर ऊर्ध्वगमन की ओर दौड़ा सकता है।

वैज्ञानिक बताते है कि प्रत्येक मनुष्य अपने वायुमण्डल से ऋण विद्युत आयनों को श्वास द्वारा सोखता है। ये आयन रक्त के माध्यम से शरीर के सभी भागों मे फैलकर समस्त उत्तकों और कोषों को ऋण विद्युत से संतृप्त कर देते हैं। ये विद्युत आयन त्वचा से निष्कासित हो वातावरण में फैल जाते हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक फॉडनेस के अनुसार शरीर में एक विद्युत चक्र सतत् चलता रहता है।

पृथ्वी पर जिस भूमण्डलीय दबाव तथा विद्युत विभव के आकर्षण में जीवधारी रहते हैं, वैज्ञानिकों के अनुसार शरीर रूपी जनरेटर तथा मन संस्थान की विद्युत को सक्रिय बनाये रखने के लिये वह अत्यन्त आवश्यक है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाण्डेनियल एवं कार्टबर्ग ने यह सिद्ध किया कि मानव का दीर्घ जीवन तथा प्रजनन क्षमता अदृश्य बाह्य क्षेत्रों से आ रही विद्युत वर्षा पर निर्भर है। इस विशाल विद्युत संधारक को जिसके मध्य हम सब बैठे हैं—वैज्ञानिक 'ग्लोबल कैपेसीटर' कहते हैं। यह शान्त नहीं बैठा रहता वरन् उसमें प्राकृतिक हलचलें व विद्युत स्खलन निरन्तर होता रहता है। इस कैपेसीटर से जो तरंगें निस्तृत होती हैं उनकी मूल आवृत्ति लगभग 7-8 तरंगें प्रति सैकिण्ड होती है। वे पृथ्वी सतह तथा आयनोस्फीअर के बीच निरन्तर गुंजायमान होती रहती है। इन तरंगों को **"शूमेन रेजोनेन्स"** कहते हैं और यह एक अद्भुत साम्य है कि हमारे मस्तिष्क की विद्युत तरंगें इनसे मिलती जुलती हैं। एक ही आवृत्ति (फ्रिक्वेन्सी) पर दोनों चलायमान हैं। श्री आर. ए. वेद ने तो अपनी पुस्तक **"द सरकेडियन रिद्म्स ऑफ मेन"** में यहां तक सिद्ध किया है कि मनुष्य के रिद्म (क्रियाकलाप) विद्युत क्षेत्रों और विद्युत-चुम्बकीय तरंगों से विशेष रूप से प्रभावित होते हैं तथा आस पास के वातावरण को अपने अन्दर चलायमान इन हलचलों से प्रभावित करने में भी पूर्णतः सक्षम है।

इसके अतिरिक्त मनुष्य जिस धरती पर रहता है, उसके गर्भ में एक प्रचण्ड प्रभावशाली विद्युतीय क्षेत्र होता है। प्रति वर्ग से. मी. एक एम्पियर के लगभग प्रवाहित यह शक्ति धारा सारे पृथ्वी क्षेत्र में कुण्डलाकार व्याप्त होने के कारण कई गुना हो जाती है व चुम्बकीय-विद्युतीय तूफानों का रूप ले लेती है और मानवी काया के हर अंग अवयव को, जीव कोषों, रक्त कोषों तथा चक्र उपत्यिकाओं को प्रभावित करती है। रूस में इस दिशा में परामनो वैज्ञानिक शोधों ने बताया है कि अतीन्द्रिय क्षमता का जागरण बहुत कुछ अपने अन्दर के प्रवाह का इस चुम्बकीय धारा से साम्य बिठाने से संभव है।

ऊपर वर्णित गूढ़ वैज्ञानिक विवेचन का सार समझने का प्रयत्न करें तो हम कुछ निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—ब्रह्माण्ड में इलेक्ट्रोमेग्नेटिक सत्ता विद्यमान है, जो ग्रह नक्षत्रों की भ्रमणशीलता और आकर्षण के उभय पक्षीय प्रयोजन तो पूरा करती ही है, साथ ही अणु जगत की हलचलों के लिये भी जिम्मेदार होती है। यह जड़ शक्ति नहीं है, प्राण शक्ति का प्रवाह है। अणु परमाणुओं की संरचना व गतिविधियों के रूप में हर जीवधारी के अन्दर वह दृश्यमान होती है।

अतीन्द्रिय शक्तियां और सांख्यकीय प्रयोग

ई. एस. पी. सम्बन्धी प्रयोगो के क्षेत्र मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम ड्यूक विश्व विद्यालय के डॉ. जे. बी. राइन का है। राइन ने इस बात को अच्छी तरह समझा कि मात्र संयोग व अतीन्द्रिय ज्ञान से प्राप्त परिणामो मे स्पष्ट पृथकता तभी दिखलायी जा सकती है, जबकि प्रयोग बहुत बड़ी संख्या मे दोहरायें जाये व इन प्रयोगों को इस प्रकार की दशाओं में सम्पन्न किये जाये, जिससे किसी को भी यह शंका नही रह सके कि परिणामों का आधार अतीन्द्रिय शक्ति के अतिरिक्त कुछ और है।

राइन ने अपने प्रयोगों के लिये एक विशेष प्रकार के पत्ते (कार्ड्स) बनवाये, जिन्हे प्रारम्भ मे जैनर कार्ड्स और अब प्रायः ई. एस. पी. कार्ड्स कहा जाता है। ऐसे पच्चीस पत्तो की एक गड्डी मे ताश के पत्तों के आकार के पाच तरह के पाच-पाच पत्ते होते हैं। पाच तरह के पत्तों मे अन्तर उन पर अंकित चिन्हो का होता है। यह पाच चिन्ह है—आयत, गोला, लहरें, धन, व सितारा। गड्डी को अच्छी तरह फीसने के बाद यदि एक-एक करके पत्तो को उल्टा रखा जाय तो उस पर अंकित चिन्ह के बारे में सही अनुमान लगा पाने की सभावना 5 में से 1 बार की होती है अर्थात पूरी गड्डी मे 5 बार आपका सही अनुमान मात्र संयोग द्वारा संभव माना जा सकता है। किन्तु यदि बार-बार आप 5 से अधिक बार सही पहचान करने में सफल हो जाते हैं, तो इसका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि मात्र संयोग के अतिरिक्त कोई और शक्ति क्रियाशील है जो इस परिणाम के लिये उत्तरदायी है। यह शक्ति ही अतीन्द्रिय शक्ति (ई. एस. पी.) है।

इस तरह के पत्तो को उपयोग करते हुए राइन व उनके सहयोगियों ने अनेक प्रयोग किये व यह स्पष्ट दर्शाने की चेष्टा की कि उनके प्रयोगों में प्राप्त परिणामो को मात्र "संयोग" नही माना जा सकता। प्रयोग कर्ता व परीक्षार्थी को लगभग 100 गज दूर अलग-अलग भवनों मे बैठाकर भी प्रयोग किये गये। ऐसे एक प्रयोग में भी संयोग द्वारा संभव वास्तविक सही पहचान का अनुपात 1 : 10 या 1 : 1000,000,000,000, पाया गया।

यह प्राण एक चेतन ऊर्जा है जो मनुष्य में काया के इर्द-गिर्द फैली दिखाई देती है। इसे ही "तजोवलय" कहते हैं। विश्वव्यापी महाप्राण के वैभव भण्डार से हर जीवधारी अपनी पात्रता के अनुसार इसे पाते रहते हैं। यह मानव के लिये सहज संभव है कि यह प्रयत्न करे, उत्साह संजोये और संकल्प बल के माध्यम से इसे समष्टि जगत प्राण प्रवाह को अधिकतम अपने अन्दर खीच सके।

ध्रुवीय प्रदेशों में जिस प्रकार चुम्बकीय तूफानों का प्रकाश "अरोरा बोरिएलिस" के रूप मे छाया रहता है। उसी प्रकार महापुरुषों का चुम्बकत्व-विद्युत ऊर्जा के प्रकाश वलय के रूप मे उनके चतुर्दिक व्याप्त रहता है। यह प्रकाश वलय आन्तरिक चुम्बकत्व व विद्युत प्रवाहों के अनुरूप भिन्न-भिन्न होता है। तत्वदर्शी-मनीषी किसी व्यक्ति के चतुर्दिक व्याप्त इसी तेजोवलय से उसका आन्तरिक चेतना स्तर व अन्त.करण मे ले रही वृत्तियो की झाखी देख लेते है।

इसी तेजोवलय के प्रक्षेपण को सूक्ष्म शरीर प्रक्षेपण (एस्ट्रल प्रोजेक्शन) कहा गया है। परा-मनो वैज्ञानिक इसे साइकिक डबल प्रोजेक्शन कहते है। इसे ही परामनो वैज्ञानिकों ने ई. एस. पी. प्रोजेक्शन कहा है।

□□

अतीन्द्रिय शक्तियां और सांख्यकीय प्रयोग

ई. एस. पी. सम्बन्धी प्रयोगो के क्षेत्र मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम ड्यूक विश्व विद्यालय के डॉ. जे. बी. राइन का है। राइन ने इस बात को अच्छी तरह समझा कि मात्र संयोग व अतीन्द्रिय ज्ञान से प्राप्त परिणामो मे स्पष्ट पृथकता तभी दिखलायी जा सकती है, जबकि प्रयोग बहुत बडी संख्या मे दोहराये जाये व इन प्रयोगों को इस प्रकार की दशाओ में सम्पन्न किये जाये, जिससे किसी को भी यह शका नही रह सके कि परिणामों का आधार अतीन्द्रिय शक्ति के अतिरिक्त कुछ और है।

राइन ने अपने प्रयोगो के लिये एक विशेष प्रकार के पत्ते (कार्ड्स) बनवाये, जिन्हें प्रारम्भ मे जैनर कार्ड्स और अब प्रायः ई. एस. पी. कार्ड्स कहा जाता है। ऐसे पच्चीस पत्तो की एक गड्डी में ताश के पत्तों के आकार के पाच तरह के पाच-पाच पत्ते होते हैं। पांच तरह के पत्तों में अन्तर उन पर अंकित चिन्हो का होता है। यह पांच चिन्ह हैं—आयत, गोला, लहरें, धन, व सितारा। गड्डी को अच्छी तरह फीसने के बाद यदि एक-एक करके पत्तो को उल्टा रखा जाय तो उस पर अंकित चिन्ह के बारे में सही अनुमान लगा पाने की सभावना 5 मे से 1 बार की होती है अर्थात पूरी गड्डी मे 5 बार आपका सही अनुमान मात्र सयोग द्वारा संभव माना जा सकता है। किन्तु यदि बार-बार आप 5 से अधिक बार सही पहचान करने में सफल हो जाते हैं, तो इसका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि मात्र संयोग के अतिरिक्त कोई और शक्ति क्रियाशील है जो इस परिणाम के लिये उत्तरदायी है। यह शक्ति ही अतीन्द्रिय शक्ति (ई. एस. पी.) है।

इस तरह के पत्तो को उपयोग करते हुए राइन व उनके सहयोगियों ने अनेक प्रयोग किये व यह स्पष्ट दर्शाने की चेष्टा की कि उनके प्रयोगों मे प्राप्त परिणामों को मात्र "संयोग" नही माना जा सकता। प्रयोग कर्त्ता व परीक्षार्थी को लगभग 100 गज दूर अलग-अलग भवनो में बैठाकर भी प्रयोग किये गये। ऐसे एक प्रयोग में भी संयोग द्वारा संभव वास्तविक सही पहचान का अनुपात 1 : 10 या 1 : 1000,000,000,000, पाया गया।

जब एक दम वैज्ञानिक तौर पर व पूर्ण सतर्कता से सम्पन्न किये गये इन प्रयोगों में का प्रकाशन हुआ तो वैज्ञानिक क्षेत्रों में खलबली मच गई।

यद्यपि डॉ पर्सी डायाकोनिस, सांख्यकी विभाग, स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी, केलिफोनिया, ने ई एस. पी. सम्बन्धी अनेक चालों की पोले खोली है, लेकिन उनका भी मानना है कि ई एस. पी. के लिये सांख्यिकीय प्रमाण सर्वाधिक प्रामाणिक है।

नोर्थ केरोलिना डरहम स्थित टी बी. राइन फाउन्डेशन, में एक व्यक्ति—बी डी. पर अनेक प्रयोग किये गये। प्रयोग नियंत्रित अवस्था में किये गये थे। अतएव परिणाम बड़े उत्तेजना पूर्ण तथा वैज्ञानिक जगत में हलचल मचाने वाले थे। इन प्रयोगों की वैधता की पुष्टि के लिये डॉ. पर्सी डायाकोनिस को हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के साइकोलोजिकल डिपार्टमेंट द्वारा आमन्त्रित किया गया। प्रयोग में दो तरह से कार्ड की गड्डियो को पीसा गया। एक प्रयोग में दो व्यक्तियों ने लाल तथा नीली गड्डिया पीसी। दो व्यक्तियों को जोर से उनके प्रकार बताने को कहा। एक ने ईंट का इक्का बताया तथा दूसरे ने हृदय का तिक्का बताया। दोनों गड्डियों को टेबुल पर उल्टा रख दिया गया। पर्सीडायकोनिस को निर्देश मिला कि वह एक के बाद एक प्रत्येक गड्डी के कार्ड को उल्टे जब तक कि उन्हें बताया गया नाम नहीं आ जाय। ताश की लाल गड्डी में पहले बताया हुआ पत्ता आया जो कि हृदय का तिक्का था। बी डी. चिल्लाया—चौदह। तब उसे निर्देश दिये गये कि वह नीली गड्डी की कार्ड में 14 वा पत्ता उठावे। उन्हे आश्चर्य हुआ कि उस नीली गड्डी में 14 वा पत्ता दिल के तिक्के का था। बी. डी. के साथ अन्य अनेक प्रयोग किये गये लेकिन उनमे सयोग की मात्रा बहुत कम थी। इससे स्पष्ट ई. एस. पी का संकेत मिलता है।

ई. एस पी. के मामले मे "सब्जेक्ट चीटिंग" भी बहुत होता है। इससे हमे सावधानी बरतनी चाहिये। टेड सेरिअस डेनवर टी वी स्टेशन पर, टी. वी. फिल्म पर "साइकिक इमेजेस" उत्पन्न करता था यानी यह केमरा की पोलेरोइड फिल्म पर साइकिक फोटोग्राफ उत्पन्न करता था जिसे कि उसने पहले कभी नहीं देखा। सेरिअस खुले रुप से एक पेपर ट्यूब का उपयोग किया करता था जिसे कि वह अपने माथे पर रखता था जो कि केमरे की ओर इंगित करता था। ताकि वह थोट वेव्ज को फोकस कर सके। एक कोशिश में परसी डायाकोनिस ने देखा कि टेड सेरिअस चुपचाप उस ट्यूब में कुछ रख रहा है। जब उसने उस ट्यूब का परीक्षण करने की आज्ञा चाही तो

दर्शन दीर्घा चिल्ला उठी। "तुम ऐसा नही कर सकते।" सेरिअस ने शीघ्रता से ट्यूब को जेब मे रख लिया। इसी प्रकार से गेलर के बारे मे जाना जाता था कि वह विचार शक्ति से धातु के "लिटस" बनावट को इस कदर बदल देने की क्षमता रखता है कि उसकी अनुलिपि नही की जा सकती। लेकिन यूरी गेलर नाइटिनोल तार का उपयोग किया करता था। नाइटिनोल, निकल तथा टाइटेनिअम का मिश्र धातु है। नाइटिनोल की स्मृति को गर्म तथा ठंडा करके आसानी से बदला जा सकता है।

लेकिन इससे यह आशय नहीं है कि हर ई. एस. पी. सब्जेक्ट चाल चलता हो।

पर्सी डायाकोनिस का मानना है कि ई. एस. पी. का व्यापक रूप से सामान्य तरीका सांख्यकीय है। यही नही, ये परीक्षण उत्कृष्ट सांख्यकीय महत्त्व के है। इससे आशय यही है कि ये तरीके महज सयोग के आधार पर असंभाव्य होते हैं।

लेकिन यदि प्रयोग अनियन्त्रित (बेडली कन्ट्रोल्ड) है तो महज सयोग भी सभाव्य नजर आता है। उदाहरण के लिये प्रसिद्ध जेनिथ रेडियो प्रयोग को लीजिये। इसमें श्रोता ताश के पत्ते के 'रेन्डम सीक्वेन्स' पर अनुमान लगाने के लिये आमन्त्रित किये गये तो सही अनुमानो का अनुपात अधिक था। यह पाया गया कि सबजेक्ट द्वारा सीकवेन्सेज का वितरण रेन्डम से बहुत दूर था। इस अवस्था मे स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का हनन किया गया। जेनिथ के जटिल विश्लेषण किसी प्रकार का आश्चर्य पैदा नही करते।

पूर्ण नियन्त्रित अवस्था में 'रेन्डमाइजेशन' का विचार ई. एस. पी प्रयोगों के लिये अधिक उपयुक्त है। इसकी साख्यकीय दृष्टि से विश्वसनीयता भी है। रेन्डमाइजेशन का विचार सी. रिचेट तथा एफ. वाई. एजवर्थ ने दिया था। इसके पश्चात् एस. एग. विल्कस ने पेरानोरमल प्रयोगों के लिये साख्यकीय विधि पर लेख लिखे जिन्हे व्यापक ख्याति प्राप्त हुई। ई. एस. पी. के लिये आर. ए. फिशर ने नई तकनीक निकाली—क्लोजगेसिंग की। ई. एस. पी. के लिये आई. जे. गुड ने लगातार नये प्रयोग सुझाये। प्रसिद्ध साख्यकीविद, जे. ए. ग्रोनगुड तथा सी. ई. स्टुआर्ट ने जे. बी. राइन द्वारा ई. एस. पी. के लिये किये गये प्रयोगो को उचित ठहराया।

पर्सीडायाकोनिस ने साख्यकी मे फीडबेक के उपयोग को ई. एस. पी. के लिये अधिक उपयोगी माना।

अभी इस दिशा में अनुसंधान किया जाना बाकि है लेकिन ई.एस.पी. के लिये साख्यकीय ही अधिक विश्वसनीय तथा प्रामाणिक वैज्ञानिक तरीका है।

राइन द्वारा स्थापित पैरासाइकोलोजी इन्स्टीट्यूट के डाइरेक्टर डॉ. हेल्मेट श्मीडिट ने इक "रैंडम टार्जेट जेनरेटर" नामक इलेक्ट्रोनिक उपकरण निर्मित किया है। इसमें स्ट्रोंशियम 90, नामक रेडियोएक्टिव तत्व का उपयोग पूर्वाभास (प्रीकोग्नीश्म) के परीक्षण के लिये किया गया जो सफल रहा। इसमें चार तरह की रोशनी वाले बल्ब लगे है। और रंगो के चार स्विच हैं। परीक्षणाधीन व्यक्ति से कहा जाता है कि जो स्विच आपके विचार से अगली बार जलेगा, उसके निकट का स्विच दबाइये। स्विच दबाते ही एक द्वार खुलता है और स्ट्रोंशियम—90 से इलेक्ट्रोन निकल कर घूमने वाले एक स्विच से टकराते है, जो कि चारो में से किसी एक बल्ब को जला देता है। कौनसा बल्ब जल उठेगा, यह पहले से तय नही होता। इस प्रयोग मे कठिनाई से कुछ सेकिंड लगते है। अतः साख्यिकीय पुष्टि के लिये थोड़े समय मे ही प्रयोगों को कई सख्याओ मे दुहराया जा सकता है।

एस्ट्रल-प्रोजेक्शन अब केवल गुह्य विद्या (आकलटिज्म) का सिद्धान्त मात्र नही रह गया है बल्कि इसे वैज्ञानिक या "तकनीको-ड्रीमिग" ने अपना लिया है। गुह्य विद्या की सर्वाधिक आश्चर्यकारी देन है यह सिद्धान्त कि श्रेष्ठतम मानव-शरीर थ्री डाइमेनशंस ऑफ स्पेस और वन डाइमेनसश ऑफ ट्यूम के सानुपातिक विप्रत्यय (चतुर्विम) से आकार ग्रहण करता है। इस सिद्धान्त को भलीभांति समझकर, आचरण में लेने की स्थिति प्राप्त होने पर मानव अपने शरीर को किसी भी स्थान पर किसी भी दूरी और परिणाम में प्रकट व पुनर्लय कर सकता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार, अखिल तथा दीर्घ कालीन मेडीटेशन (ध्यान) द्वारा स्वदेह की रक्षा हेतु ब्रह्माण्ड रश्मियो का उपयोग किया जा सकता है। तब उस ब्रह्माण्ड क्षेत्र—संयुक्त स्थिति में वह जो भी सयत विचार करेगा, वही ब्रह्माण्ड रश्मियों द्वारा "कण्डेन्स" होकर आकार-सूक्ष्म अथवा स्थूल-ग्रहण कर सकेगा, और उसे मालूम होगा कि उसका सूक्ष्म शरीर ब्रह्म का एक अनत शक्तिमय आविष्कार है। इस सर्वयोग के आचरण में आने पर सूक्ष्म शरीर के सब चमत्कार बच्चों का खेल प्रतीत होंगे।

साईटिफिक या टेक्नोलाजी ड्रीमिग के अनुसार एक ऐसा समय आयेगा जब "टेलीपोर्टेशन" सम्भव होगा। टेलिपोर्टेशन में व्यक्ति "बिना किसी रेडियो" के स्वयं को सदेह प्रक्षेपित कर सकेगा। यह आवश्यक नही कि सम्पूर्ण देह प्रक्षेपित हो, कोई भी सजीव तत्व प्रक्षेपित हो सकता है—यथा

मन का प्रक्षेपण। जैसा कि आल्फ्रेड बी बेस्टर की कृति "द स्टार्स माई डेस्टिनेशन" में एक रोचक विचार दिया गया है कि एक व्यक्ति जिसे जान से मारने की धमकी दी जाती है, स्वयं को अचेतन तथा अनैच्छिक रूप से दूसरी सुरक्षित जगह स्थानान्तरित कर देता है। यदि मन के किसी जीन को किसी दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में टेलिपोर्ट कर दिया जाय तो उस व्यक्ति के मन को जाना जा सकता है। यदि आप किसी व्यक्ति के मस्तिष्क को छूना चाहेंगे तो आप पायेंगे कि वह उसका मस्तिष्क 3000 मील की दूरी पर है। मस्तिष्क को दूसरे व्यक्ति में टेलिपोर्ट कर दिया गया है और केवल रेडियो-लिंक द्वारा वह प्रेषित व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित किये हुये विचित्र अनुभूतियां ले रहा है। आर्थर क्लार्क ने "भविष्य के लिये" "प्रोफाइल ऑफ फ्यूचर" में इस बात की सम्भावना व्यक्त की है।

जिस दिन मानव के मस्तिष्क को "ट्रान्स्प्लान्ट" किया जा सकेगा, तो इस बात की सम्भावना अधिक बढ़ जायेगी कि मस्तिष्क को टेलिपोर्ट किया जा सके। ब्रेन-ट्रांसप्लान्ट के बारे में एल्विन टोलर ने "वैज्ञानिकों" के प्रयासों का उल्लेख किया है। लेकिन इसके लिये प्रयासों की लम्बी सड़क की आवश्यकता होगी। हमें आशा करनी चाहिये कि वैज्ञानिकों का यह स्वप्न साकार हो।

□□

सम्मोहन : विचार-संप्रेक्षण

अतीन्द्रिय शक्तिया सामान्य अनुभव के परे होती है। अतीन्द्रिय शक्तियां संबंधी समय-समय पर ऐसी अनेक घटनाएं घटित होती रही है जिसने मनुष्य को आश्चर्य चकित किया है। ऐसे हजारो उदाहरण दिये जा सकते है जो व्यक्ति की अतीन्द्रिय क्षमता को दर्शाते है। लेकिन क्या विज्ञान इन अतीन्द्रिय शक्तियो की विवेचना कर सकता है? हमारा मन सब इन्द्रियो को अपनी दिव्यता प्रदान करने, उन्हे दूरगामी, पारदर्शी बनाने की सामर्थ्य रखता है तथा उनमें अज्ञात दूरी पर स्थित, छिपे पदार्थों को देखने, सुनने, सूंघने आदि की शक्तिया विकसित कर देता है। क्या विज्ञान ऐसे मन की विवेचना कर सकता है? व्यक्ति, दूर बैठे हुए किसी व्यक्ति के मन, उसके *मानसिक विचार* या मनोभावों को बिना किसी माध्यम का उपयोग किये जान लेता है (विचार-सम्प्रेषण अर्थात टेलीपैथी) अथवा व्यक्ति किसी वस्तु अथवा घटना का दूर बैठे हुए आभास पा लेता है (परोक्ष ज्ञान या क्लेअर वायेन्स) ऐसा किस प्रकार से होता है? किसी व्यक्ति को भविष्य में होने वाली घटना पूर्व मे ही ज्ञात हो जाती है (पूर्वाभास या प्रीकोग्नीशन) या व्यक्ति प्राचीनकाल में घटित किसी घटना का ज्ञान, बिना किसी मान्य साधनो के प्राप्त कर लेता है (प्रीकोग्नीशन)। तो किस प्रकार से व्यक्ति ब्रह्माण्ड की इस व्यापक चेतना में जुड़ जाता है? परामनोविज्ञान तथा विज्ञान इसके बारे में क्या सोचता है? क्या सम्मोहित होने पर व्यक्ति ऐसा कार्य कर सकता है। क्या सम्मोहन विज्ञान है? सम्मोहन का आधार क्या है? विचार-सम्प्रेषण (टेलिपैथी) एक शरीर से दूसरे शरीर मे कैसे संभव हो पाता है।

परामन या परामानसिक तत्व

विज्ञानी विभिन्न रिसर्चेज के आधार पर इस नतीजे पर पहुँचे है कि धर्म जिसे परान्तिना कहता रहा है, वह सत्य है तथा मानव का जागृत मन उस विराट मन का एक लघु भाग है जिसका एक बड़ा भाग एक रहस्यमय आवरण के पीछे छिपा रहता है और जो परदे के पीछे से हमारे चेतन मन को कठपुतली की तरह नचाता रहता है। विज्ञानियों ने उस उपचेतन मन को परा-मन अथवा "पैरामाइकिक" तत्व कहा है।

यही परामन स्वप्न के रूप में मनुष्य की निद्रा में उजागर होता है। यह परामानसिक तत्व शरीर से बाहर निकलकर वर्तमान से भविष्य में चला जाता है या भूत मे गमन करता है। रोगों की चिकित्सा करता है तथा संकल्प शक्ति बनकर दूसरों को सम्मोहित करता है अथवा किसी हल्की सी चीज को हिमालय जैसी भारी बना देता है। व्यक्ति को यह शक्ति देता है कि वह दूसरे व्यक्ति की किसी भी चीज को छूकर उसके व्यक्तित्व के बारे में सारे रहस्यों का वर्णन कर सके। यह परामानसिक तत्व ही हमे लाखों मील दूर बैठे हुए लोगों के साथ परामानसिक संचार की शक्ति देता है तथा मनुष्य मे ही नही पशुओं मे भी अतीन्द्रिय सवेदन जागृत कर देता है, उन्हे अज्ञात रहस्यो के उद्‌घाटन की शक्ति प्रदान करता है। यही परामन मृत्यु के बाद इस संसार के लोगो के साथ सम्पर्क स्थापित करता है।

आधुनिक विज्ञान और सम्मोहन

विज्ञानियो द्वारा इस बात की संभावना व्यक्त की जा रही है कि हमारी सृष्टि के असंख्य प्राणी ब्रह्माण्ड के स्पंदन और सवेदन को ग्रहण करने वाले अनेक छोटे-मोटे रिसिवर है। प्रसिद्ध जीव विज्ञानी प्रो. फ्रेंक ब्राउन कुछ ऐसा ही सोचते हैं। नार्डी मनोश्चिकित्सा-विज्ञानी डॉ थेलमा मौस का कहना है कि भले ही सुनने में यह बात विचित्र सी लगे कि कोई व्यक्ति या उसकी चेतना शरीर से बाहर निकलकर क्षणांस में ही हजारो कि. मी. चली जाये और लौट आये तथा वर्तमान काल में हजारों वर्ष पूर्व की अथवा भविष्य की घटनाओं को देख ले लेकिन यह एक तथ्य है कि सम्मोहित होने पर व्यक्ति इस प्रकार के चमत्कार पूर्ण कार्य कर सकता है। मेडिकल साइंस ने हिप्नोटिज्म को अपना लिया है। हिप्नोटिज्म या सम्मोहन को मेडिकल साइंस मे "नर्वस स्लीप" भी कहते है। हिप्नोटिज्म एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है—स्लीप।

सम्मोहन तथा सजेसचन विधि

किस प्रकार से किसी व्यक्ति को सम्मोहित किया जा सकता है? सम्मोहन का आधार क्या है? इन प्रश्नो के उत्तर डॉ. जे. ब्रेड ने अपनी प्रसिद्ध कृति "न्यूरीप्नोलोजी" में दिया है।

ब्रेड का सम्मोहन सिद्धान्त निम्न प्रकार से है—

सम्मोहन का प्रमुख आधार है–असंवेदन (इनसेन्सिबिलीटि) यानी विचारों के क्रिया कलापों का स्थगन। यह तभी हो सकता है जबकि बाह्य उद्दीपक इन्द्रियों को प्रभावित करने में असमर्थ हो जाते हैं।

ब्रेड सिद्धान्त के अनुसार तंत्रिका की नाड़ी की संवेदनशीलता (नर्व सेन्सिबिलीटि) एक प्रकार के "नर्वस फोर्स" पर निर्भर करती है। तंत्रिका मे नर्वस फोर्स के नियमित फैलाव या विसरण (डिफ्यूश्जन) के लिये सामान्य तथा पर्याप्त मात्रा में विचारों की क्रियाशीलता आवश्यक है। यदि विचारों की यह क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है तो तंत्रिका को अनुप्राणित करने का कार्य या तंत्रिकोतेजन (इन : वेशन) दब जाता है तथा तंत्रिकाएं बाह्य संवेदनी (एक्सटेर्नल सेन्सेसन) या बाह्य जगत के इम्प्रेशन्स को मस्तिष्क तक पहुचाने मे असमर्थ हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में संवेदन (सेन्सेशन), मानसिक क्रियाशीलता का एक प्रमुख प्रेरक तत्व है।

अत नाडी मे असवेदन की स्थिति लाने के लिये विचारो के क्रियाकलापो को निलंबित (सस्पेंड) करना आवश्यक होता है। यह कार्य बाह्य-उद्दीपको या एजेन्ट्स को इन्द्रियों से पृथक रखकर किया जा सकता है जो इन्हें प्रभावित करते है। यह सभव नही कि मस्तिष्क की क्रियाशीलता को पूर्णतया निलंबित किया जा सके लेकिन उसे एक अल्पतम् सीमा तक कम किया जा सकता है; यदि उसे सरल, समरूप तथा अनवरत संवेदन ही प्राप्त हो। इस प्रकार से विचारो की क्रियाशीलता का स्फीअर एक बिन्दु में समा जाता है। इस समय सेरिब्रल गेंगलिया की कोशिकाए (मस्तिष्क) अविरल "नर्वस फोर्स" सचित करती है। लेकिन यह सम्पूर्ण ऊर्जा की एक बहुत अल्प मात्रा होती है। इस प्रकार से यह नर्वस फोर्स मस्तिष्क में तब तक एकत्रित होता रहता है जब तक कि संकुलन (कन्जेशन) या खून एक सीमा मे जमा होने की स्थिति नही आती। इस स्थिति को "हाइपोटेक्सिक" स्थिति भी कहते है।

इस स्थिति मे बाह्य "इम्प्रेशन सेन्सोरियम" के अर्द्ध दरवाजे से यथा दृष्टि पथ, श्रवण या पेशीय तंत्र से शरीर के भीतर -मस्तिष्क तक बहने लगते है। तथा नर्वस फोर्स का तनाव अपनी पूरी सामर्थ्य से कार्य करने लगता है।

यह "नर्वस फोर्स जो कि तंत्रिकोतेजन का क्रियात्मक केन्द्र है, इम्प्रेशन के द्वारा सक्रिय होना है तथा इससे विशिष्ट क्रियाए प्रकट होती है। ये मेन्टल इम्प्रेशन, सम्मोहन (सजेशन) द्वारा दिये जाते है। वास्तव में मेन्टल इम्प्रेशन के रूप मे एक विचार सजेस्ट या सम्मोहित किया जाता है। इसे "ब्रेडिक आपरेशन" की द्वितीय स्टेज कहते हैं; जिसे विज्ञानी डयूरन्ड डी ग्रोस आइडियो—प्लास्टिक कहते हैं। इस प्रक्रिया मे अर्थात् मेन्टल इम्प्रेशन के सम्मोहन मे मानसिक उत्तेजना के पूर्व प्रेरित किये गये सवेदन पुनर्प्रकट होते

हैं। सम्मोहित विचारों द्वारा पुनर्प्रकट संवेदन स्मृति के सवेदन कहलाते है। यानी सम्मोहित विचारों द्वारा पूर्व की स्मृतियां पुनर्प्रकट हो जाती हैं।

इसी सम्मोहन तकनीक द्वारा विलुप्त स्मृतिया पुनः लौट आती है। और कभी-कभी ऐसी स्मृतियां भी लौट आती है जो पूर्वजन्म से सम्बन्धित होती है या जिसका ब्रह्माण्डीय चेतना मे सम्बन्ध होता है। ब्रह्माण्डीय चेतना का सम्बन्ध बने रहने के कारण ही एक व्यक्ति एक ऐसी दूर स्थितर प्रदेश की आंचलिक भाषा का गीत गुनगुनाने लगा था जिसे कि उसने इस जन्म मे कभी नही सीखा था। इसी ब्रह्माण्डीय चेतना से सम्बन्ध स्थापित होने के कारण परोक्ष दर्शन (क्लेअरवोयेन्स), पूर्वाभास (प्री काग्नीशन) तथा भूतकाल का ज्ञान (रिट्रोग्नेशन), विचार-सम्प्रेपण (टेलिपैथी) आदि सभव होने है।

विचार-सम्प्रेषण

प्रसिद्ध पेरासाइकोलोजिस्ट हडसन के अनुसार विचार सम्प्रेषण या टेलिपैथी मूलतः "सबजेक्टिव माइन्ड" की सहभागिता है या टेलिपैथी सबजेक्टिव माइन्ड के मध्य सम्प्रेषण का एक सामान्य साधन है। टेलिपैथी की अभिव्यक्ति सामान्यतया नही हो पाती, इसका मुख्य कारण है कि इसके लिये विशिष्ट दशाओं की आवश्यकता होती है ताकि चेतना की अवसीमा (थ्रेसोल्ड ऑफ कान्ससनेस) से ऊपर परिणाम प्राप्त हो सके। मनुष्य के "सबजेक्टिव माइन्ड" एक दूसरे से नियमित रुप से सम्पर्क साधे रहते हैं जबकि "आब्जेक्टिव इन्टेलिजेन्स" से दूरस्थ अवबोध (रिमोटेस्ट परसेप्शन) का सम्पर्क नही रहता। सब्जेक्टिव माइन्ड के मध्य सम्प्रेपण प्रायः अत्यधिक घनिष्ठ व्यक्तियो मे होता है।

प्रसिद्ध चिकित्सा शास्त्री जेम्स आर कोक; एम. डी. ने अपनी कृति "हिप्नोटिज्म" मे लिखा है कि टेलिपैथी से तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति अथवा मेन्टल सजेसचन से, बिना किसी मेटेरियल मीडिया के दूरस्थ व्यक्ति पर अपना प्रभाव फैला सकता है।

जब कोई व्यक्ति किसी दूरस्थ व्यक्ति को सम्मोहन-निद्रा (हिप्नोटिक स्लीप) मे रखता है तो दुबारा सम्मोहित करने के लिये उसे शरण में रखने की अथवा व्यक्तिगत सम्पर्क बनाये रखने की हमेशा के लिये आवश्यकता नही होती। दूरस्थ व्यक्ति पर बिना किसी आपरेटर की दृष्टि के, उसकी इच्छा शक्ति के, या बिना किसी सम्मोहन-दृष्टि के भी प्रभाव डाला जा सकता है।

इसी प्रकार का प्रभाव चुम्बक के द्वारा पड़ता देखा गया। चुम्बक के ध्रुवों की प्रकृति चेहरे के भावों मे परिवर्तित लाती। यदि सम्मोहित व्यक्ति के हाथ मे चुम्बक का उत्तर ध्रुव रखा जाता तो व्यक्ति में खुशी की लहर दौड़ जाती तथा दक्षिण ध्रुवों से घ्रणा उत्पन्न होती। चुम्बक के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में रोग को ले जाया जा सकता है लेकिन दूसरा व्यक्ति थोड़े समय के लिये उस रोग को उसी प्रकार झेलता है जैसे चेचक के बचाव के लिये काऊपोक्स या (गाय की चेचक) को झेलना। चुम्बक को पहले एक बद सर्कल मे घुमाया जाता है, इसके पश्चात उत्तर ध्रुव को शरीर के रोग ग्रसित भाग पर घुमाया जाता है।

सबसे पहले व्यक्ति जिसे हिप्नोटाइज किया जाना है तथा रोगी पीठ के बल बैठे है। व्यक्ति को रोगी का हाथ पकडे हुए हिप्नोटाइज किया जाता है। उपरोक्त प्रक्रिया द्वारा रोगी पर चुम्बक घुमाने से हिप्नोटाइज्ड व्यक्ति रोगी की बीमारी झेल लेता है। रोगी स्वस्थ हो जाता है तथा हिप्नो-टाइज्ड व्यक्ति भी जागृत अवस्था मे आने पर पूर्ण स्वस्थ होता है।

चुम्बक के द्वारा हिप्नोटाइज्ड, करने का तरीका है पोलेराइजेशन। चुम्बक सजेश्चन (सम्मोहन) के द्वारा उत्पन्न पेशियो के संकुचन को समाप्त करता है (मोटर पोलेराइजेशन)। यह सम्मोहित मतिभ्रम का विनाश करता है तथा रग के मेन्टल पिक्चर को इसके पूरक-रग मे बदल देता है। मान लीजिये किसी व्यक्ति का मेन्टल पिक्चर "पीले रंग" का है, जैसे ही चुम्बक उसके समीप लाया जाता तो उसका मेटल पिक्चर बदल जाता है। उसके चेहरे पर हर्ष की जगह विषाद् की रेखा खिंच जाती है। यानी उसका मेंटल पोलेराइजेशन हो जाता है। बिनेट तथा फेरे ने इस प्रकार के प्रयोग किये है तथा वायान्की तथा सोभर ने इसकी पुष्टि की। एक और तरीका सम्मोहन मे चुम्बक के उपयोग का टेम्बूरिनी और सेपिली ने सुझाया कि सम्मोहन की स्थिति मे यदि किसी व्यक्ति के आमाशय के पिट पर चुम्बक घुमाया जाता तो इसका प्रभाव श्वसन की गतियों पर पड़ता। इलेक्ट्रोमेग्नेट से भी इसी प्रकार का प्रभाव पडता है। ट्रेम्ब्यूरिनी सोचते हैं कि चुम्बक के तापक्रम का खास तौर से शरीर पर प्रभाव पड़ता है।

सम्मोहन के इन प्रयोगों से स्पष्ट है कि मनुष्य पर चुम्बकीय ऊर्जा का गहरा प्रभाव पड़ता है और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सम्मोहन मे शरीर द्वारा ग्रहण की गई चुम्बकीय ऊर्जा का संबंध व्यापक ऊर्जा से अर्थात् ग्रहो की चुम्बकीय ऊर्जा से जुड़ जाता हो और व्यक्ति अतीन्द्रिय शक्तियो की सामर्थ्य वाला हो जाता हो। □□

क्वांटम भौतिकी और परामन

हम जानते है कि अतीन्द्रिय जगत की अनुभूति इन्द्रियो से परे है। हम अतीन्द्रिय जगत की अनुभूति सामान्य तौर पर नहीं कर पाते हैं, क्योंकि ये अनुभूतियां आकाश (स्पेश) तथा काल (टाइम) से परे होती हैं। मूर्धन्य विज्ञानी आइन्स्टइन ने यह सिद्ध किया था कि आकाश तथा काल निरपेक्ष सत्ताएं नही है, बल्कि ये सत्ताएं एक दूसरे के "आपेक्षिक" है या दोनो मे अर्न्तसबन्ध होता है। इस प्रकार भौतिकी के मूलभूत सिद्धान्तो तथा अतीन्द्रिय सत्ताओ में मूलभूत साम्यता है। हमारी मानसिक अनुभूतिया, विचार, बिंबो और स्मृतियो आदि का अस्तित्व स्थान तथा काल से परे है फिर भी वे भौतिक मस्तिष्क से जुड़े हुए हैं। ऐसा क्यों ? हाइन्स्वेर्ग ने पहली बार स्वीकार किया कि किसी परमाणु के मूल कणो के पदार्थ और अपदार्थ स्वरूप मन के प्रतिनिधि होते है। क्या विज्ञान मन के स्वरुप की विवेचना करता है ? यहाँ मन जो परामन या परामानसिक सत्ता के रुप में विकसित होकर अतीन्द्रिय व्यवहार प्रदर्शित करता है। इसी मन को प्रक्षेपित करने पर परकाया प्रवेश संभव होता है। मन भूतकाल में गमन करके पूर्वजन्म की स्मृतियों को प्रकट कर देता है। क्या भौतिकी के किसी सिद्धान्त मे इसका उत्तर निहीत है।

इसका उत्तर हमें "क्वांटम" सिद्धान्तो से मिलेगा। यह क्वाटम सिद्धान्त क्या है, किस प्रकार से यह सिद्धान्त उपरोक्त प्रश्नो की विवेचना करता है ? प्रस्तुत अध्याय मे उपरोक्त प्रश्नो की विवेचना करने का प्रयास किया गया है।

क्वांटम भौतिकी और परा-मन—

परामानसिक सत्ता या परा-मन के लिये यह आवश्यक नही कि किसी कण के रूप में या हमारे क्लासिकल नियमो मे आबद्ध होकर देखने का प्रयत्न करे। यह भी आवश्यक नही कि इसे आकार या स्वरूप प्रदान किया जाय और इलेक्ट्रोन माइक्रोस्कोप या इससे सूक्ष्मतर माइक्रोस्कोप के जरिये देखने का प्रयत्न किया जाय या शरीर में इसका स्थान निश्चित किया जाय। यहा सूक्ष्म शरीर की भी बात करली जाय। सूक्ष्म शरीर को परामनोविज्ञानी

"**साइकिक डबल**" कहते हैं। इनके अनुसार ऐसा माना जाता है कि सूक्ष्म शरीर उच्च आवृति में गमन करने वाले कण होते हैं। परामानसिक सत्ता इसी साइकिक डबल की प्रमुख आधारभूत सत्ता है और यह सत्ता साइकिक डबल का स्वरूप प्रदान करती है। यही परामानसिक सत्ता व्यापक ब्रह्माण्डीय चेतना से जुड़ जाती है।

अब प्रश्न यह है कि इस परामानसिक सत्ता को किसी भौतिक स्वरूप या आकार में देखने का प्रयत्न क्यों नहीं किया जाना चाहिये। इसका जवाब हमें क्वांटम भौतिकी से मिलेगा।

परमाणु जगत मे विशेष तौर पर दो खोजों ने क्लासिकल भौतिक जगत में भूचाल पैदा कर दिया (1) प्रकाश का दोहरा व्यवहार (2) लगभग 20 नये एलिमेंटरी कणो की खोज।

मेक्स प्लेंक, आइन्स्टाइन तथा अन्य वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुचे कि प्रकाश ऊर्जा के असतत (डिस्क्रीट) पैकेट का बना होता है, इसे फॉटोन कहते है। फोटोन की ऊर्जा, फ्रिक्वेन्सी या तरंग लम्बाई के अनुसार बदलती रहती है। इसे hv प्रदर्शित करते हैं। h प्लेंक कोन्स्टेन्ट है तथा v फ्रिक्वेंसी है। पदार्थ ऊर्जा को निश्चित क्वान्टा मे अवशोषित या उत्सर्जित करते है। हम इसके कणीय स्वरूप (ग्रेननेस) को अंकित नहीं कर सकते हैं। फोटोन का अस्तित्व तथा उसकी ऊर्जा का फिक्वेंसी पर निर्भर होना, आइन्स्टाइन के "**फोटो इलेक्ट्रिक**" (प्रकाश-वैद्युत) विश्लेषण तथा आर्थर होली कोम्प्टन के "**कोम्प्टन**" प्रभाव द्वारा सिद्ध किया गया। फोटो इलेक्ट्रिक विश्लेषण से आशय यह है कि जब किसी धातु की पट्टिका पर प्रकाश का प्रहार होता है तो उससे इलेक्ट्रोन उत्सर्जित होते है। कोम्प्टन प्रभाव से तात्पर्य यह है कि जब एक्सरे कण किसी इलेक्ट्रोन से टकराते है तो इसकी ऊर्जा का क्षय होता है तथा फ्रिक्वेंसी मे परिवर्तन हो जाता है। फोटोन के अस्तित्व से प्रकाश के क्लासिकल थ्योरी की स्थिति विकट हो गई। प्रकाश को तरंग के रूप मे माना जाने लगा। प्रकाश के "**इन्टरफेरेन्स**" (व्यतिकरण) तथा "**डिफरेक्सन**" (विवर्तन) के गुणो से यह सिद्ध हुआ कि प्रकाश तरंग की तरह व्यवहार करता है। लेकिन फोटो इलेक्ट्रिक प्रभाव से यह भी सिद्ध हुआ था कि प्रकाश कण की तरह व्यवहार करता है। इससे विज्ञानियों को यह मानना पडा कि प्रकाश का एक ही समय मे दोहरा व्यवहार होता है—कण का तथा तरंग का। उन्होंने इसे फोटोन की धारा 'के रूप में चित्रित किया है जिसे किसी निर्देशक (गाइडिंग) फील्ड द्वारा "**तरंग गति**" प्रदान की जाती है।

नील्स बोर के मोडल से यह स्पष्ट नही हुआ था कि इलेक्ट्रोन को कौन अपनी कक्षा में रखता है लेकिन ल्यूइस डी ब्रोगलाई ने इसका उत्तर दिया कि इलेक्ट्रोन तरंग के द्वारा निर्देशित होते है जिससे उनमें गति होती है। बोर ने कहा कि यदि उसका मोडल सही है तो नाभिक से इलेक्ट्रोन की कक्षा की दूरी पूर्ण संख्या (होल नम्बर्स) के वर्ग (स्क्वेअर) के अनुपात में होनी चाहिये—अर्थात् 1 ,4, 9, 16 ! यह तृतीय कक्षा की आपेक्षिक लम्बाई को दर्शाता है। यदि इलेक्ट्रोन की गति तरंग द्वारा निर्धारित होती है तो यह स्पष्ट है कि प्रत्येक कक्षा में तरंग की कुछ पूर्ण संख्याएं ठीक फिट हों। हाइड्रोजन एटम का सरल उदाहरण लेते हुए डी ब्रोगलाई ने गणना की कि बोर की कक्षा में "पायलट" वेव फिट हो जाती है।

प्रत्येक मामले मे तरंग की लम्बाई बराबर होती है उस मान से जो, प्लेंक स्थिरांक को, उस कक्षा मे इलेक्ट्रोन के द्रव्यमान तथा वेग से विभाजित करने पर आता है।

डी ब्रोगलाई के इस मूलभूत विचार को आगे स्कोडिन्जर ने विकसित किया और यह सिस्टम "वेव मेकेनिक्स" कहलाता है—एक शक्तिशाली हथियार जो परमाणु के "डाइनेमिक्स" की विवेचना करता है।

बेल टेलिफोन प्रयोगशाला के सी. जे. डेविसन तथा एल. एच. जर्मर ने एक ऐतिहासिक प्रयोग किया कि इलेक्ट्रोन किरण किसी क्रिस्टल से परावर्तित होते हुए डिफरेक्शन (विवर्तन) पेटर्न प्रस्तुत करती है। यह तरंग गति की अग्नि-परीक्षा थी। इलेक्ट्रोन की तरंग लम्बाई डी ब्रोगलाई सूत्र से मेल खाती थी।

अतः हम देखते है कि क्लासिक विचार कि कण केवल कण ही सकते हैं और तरंग केवल तरंग ही सकती है, को "वेव मेकेनिक्स" ने धक्का पहुँचाया। प्रकाश न ही केवल कण की तरह व्यवहार करता है बल्कि साथ ही साथ वह तरंग की तरह भी व्यवहार करता है।

परा-मन या परामानसिक तत्व भी ठीक फोटोन की तरह दोहरा व्यवहार करता है। मन की उच्च आवृत्ति की तरंगें ही परा-मन हो सकती हैं। परा-मन की कणीय प्रकृति हो सकती है। किर्लियान फोटोग्राफी ने इस बात का प्रयास भी किया है। हमारे शास्त्रो मे तो प्रकाश का कणीय स्वरूप माना भी गया है। न्याय तथा वैशेषिक दर्शनाकार मन को यथोक्तत्वाच्चाणु

(न्या 03/63) सूत्र के अनुसार अणु और नित्य मानते हैं। पातंजलि ने भी इसकी कणीय प्रकृति का उल्लेख किया है। योग दर्शन अथवा सूक्ष्म शरीर दर्शियों के अनुसार यह मन अनुद्भूत "प्रकाश" का एक लघु सा पिण्ड है जिसमें दाह तथा स्पर्श नही है। प्रकाश धर्म वाला होने के कारण यह सदा हो स्थिरता से चमका करता है। मन का निजी स्वरूप शुभ्रचंद बिम्बवत् अथवा शुकतारे के समान देदीप्यमान या कभी किसी झरोखे में से सूर्य किरणों के साथ आते-जाते चमकीले बिन्दुक के समान भी भासा करता है। विषयों को ग्रहण करते हुए, विषय ज्ञान से प्रतिबिम्बित होते समय मन का वर्ण "विवण होता" रहता है। जैसे सात्विक कर्म करते समय यह मन शान्त चन्द्र बिम्बवत, सोम्य वर्ण होता है, भयंकर क्रूर घोर कर्मों को करते समय मन से रक्त कण अथवा धूम्र मिश्रित लाल रंग की रश्मियां निकलती हैं, जैसे अनार की छूटने पर निकलती है जैसा कि हमने चुम्बक की सम्मोहन विधि में देखा। [साइन्स ऑफ सोल—स्वामी व्यासदेव]

अत हम देखते है कि योग दर्शन में जिस मन को प्रकाश धर्म वाला बताया गया है उसमें तथा क्वाटम भौतिकी के फोटोन की प्रकृति में कितना साम्य है। यदि हम योग दर्शन के समान मन को प्रकाशकीय धर्म वाला मानलें तो मन में तथा फोटोन की मूलभूत प्रकृति में कोई अन्तर नही रह जायेगा। जिस प्रकार से फोटोन की कणीय तथा तरग प्रकृति है, उसी प्रकार से मन की भी कणीय तथा तरंग प्रकृति होगी।

योग दर्शन मे मन का एक निश्चित स्थान बताया गया है। योग दर्शन के अनुसार मन, मानव "मस्तिष्क" के "ब्रह्मरन्ध्र" नामक स्थान मे, जिसे सहस्रार या सहस्र दल कमल या दशम द्वार कहते है, स्वर्णिम ज्योतिर्मय अण्डाकृति पिंड बुद्धिमडल के शिखर पर अवस्थित होता है तथा शुक्र तारे-सा भासता है। लेकिन यह आवश्यक नही है कि भौतिकविद भी मन के कणीय स्वरूप को देखने का प्रयास करे या शरीर मे मन के किसी स्पष्ट तथा सही पथ का पता लगाने का प्रयास करे।

इसकी विवेचना हमे "अनसर्टेन्टी के सिद्धान्त" से करनी होगी।

अनसर्टेन्टी सिद्धान्त को समझने के लिये हमे हाइन्सवर्ग के विचार-प्रयोग—"गेडनकेन एक्सपेरिमेंट" को समझना होगा जिसका कि सर्वप्रथम उपयोग आइन्स्टाइन ने आपेक्षिकता सिद्धान्त को प्रतिपादित करने में किया था।

मान लीजिये हम किसी इलेक्ट्रोन बन्दूक को पूर्णतया खाली कक्ष (निर्वात) मे क्षैतिज दिशा मे दागे, तो इलेक्ट्रोन पेराबोला का पथ अपनायेगा। लेकिन जिस क्षण फोटोन इलेक्ट्रोन से टकरायेगा (इस आदर्श कक्ष में प्रकाश के आने की व्यवस्था है) इलेक्ट्रोन पीछे की ओर हटेगा तथा इसके वेग मे परिवर्तन होगा। अतः इलेक्ट्रोन का पथ टेढ़ा-मेढा (जिगजेग) होगा। लेकिन माना कि हम फोटोन की ऊर्जा को न्यूनतम कर दें तो इससे इलेक्ट्रोन की गति में कम से कम विघ्न होगा। फोटोन की ऊर्जा को न्यूनतम, इसकी फिक्वेंसी को न्यूनतम करके किया जा सकता है। यद्यपि इलेक्ट्रोन की गति मे विघ्न कम होगा लेकिन इससे एक नई कठिनाई उत्पन्न हो जायेगी। फिक्वेंसी को कम करने से तरग लम्बाई बढेगी और तरंग लम्बाई के बढ़ने से हम वस्तु को अंकित नही कर पायेंगे और न ही उसका सही पथ। क्योंकि तरग लम्बाई बढने से डिफरेक्शन (विवर्तन) प्रभाव प्रारम्भ हो जाता है। *अतः हम इलेक्ट्रोन की सही स्थिति का पता नहीं लगा पायेंगे।* इस प्रकार अधिक लघु तरग से हम इलेक्ट्रोन की स्थिति सुनिश्चित कर सकते हैं लेकिन वह उसकी गति को बुरी तरह प्रभावित करेगी जबकि अधिक लम्बाई की तरग से इलेक्ट्रोन की गति को सुनिश्चित किया जा सकता है लेकिन उसकी सही स्थिति का अन्दाज नही होता। इसका सही तरीका यही है कि हम प्रकाश का अनुकूल (ओप्टीमल) मध्यवर्ती तरग का उपयोग करें। इससे इलेक्ट्रोन के पथ पर साधारण सा विघ्न पड़ेगा तथा इसका पथ करीब अन्दाज मे बताया जा सकेगा। यहा इलेक्ट्रोन का पथ क्लासिकल तीखी रेखा मे नही होगा बल्कि पट्टी (बेन्ड) के रूप में होगा।

यह हमें कहा ले जाकर छोडती है? हाइन्सबर्ग ने यह निष्कर्ष निकाला कि हमें यह धारणा त्यागनी होगी कि परमाणु स्तर पर किसी वस्तु के पथ को गणितीय रेखा के रूप मे खीच सकते है। ज्यामितीय रेखा की धारणा केवल साधारण अनुभवों की पकड़ में होती है। लेकिन परमाणु तथा फोटोन के संसार मे वस्तु की गति तथा घटनाएं सुनिश्चित नही की जा सकती है। फोटोन तथा एलिमेंटरी कण की गति "वेव" द्वारा निर्धारित होती है। लेकिन इस प्रकार वेव द्वारा गति का निर्धारण "प्रोबेबिलिस्टिक" (सभाव्यता) के रूप में होती है न कि डिटरमिनिस्टिक तरीके से। हम केवल फोटोन के पथ की संभाव्यता का माप कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि परमाणु के स्तर पर कण की गति तथा पथ अनिश्चित या "अनसर्टेन" होते हैं।

इसी प्रकार से मन का भी कोई सुनिश्चित पथ नही खीचा जा

सकता। शरीर में मन कहा स्थित है, ठीक से इसकी स्थिति नही बताई जा सकती है। न ही फोटोन की तरह इसकी गति निर्धारित की जा सकती है। मन का केवल संभाव्य निर्धारण ही हो सकता है अत. मन भी "अनसर्टेन्टी के सिद्धान्त" की अनुपालना करता है।

यदि हम किसी वस्तु को अधिक गहराई से देखते हैं, तो अनसर्टेन्टी सिद्धान्त (क्वान्टम मेकेनिक्स की मूलभूत शक्ति) के अनुसार वस्तु हमारे देखने से अधिक उत्तेजित होगी तथा हम और कम उस वस्तु की परवर्ती स्थिति के बारे मे जान पायेंगे। इसी प्रकार मन को अधिक गहराई से देखने का यदि हम प्रयत्न करते है तो मन अधिक आन्दोलित (डिस्टर्ब) होगा तथा हम और कम उसकी स्थिति का अन्दाज लगा पायेंगे। परमाणु आकार की सभी वस्तुए लगातार फ्लच्युएट करती रहती है। वे समय की फाइनाइट सीमा तक अपनी निश्चित स्थिति को बनाये नही रख सकती। उनके क्वान्टम फ्लक्चुएशन कभी भी ठीक-ठीक सभाव्य (प्रेडिक्टेबल) नही हो सकते।

क्वाटम फील्ड ऊर्जा केवल डिस्क्रीट यूनिट्स मे ही अस्तित्व में होती है जिसे हम "क्वान्टा" कहते हैं। जब हम क्वान्टा के सिद्धान्त को विस्तार से देखने का प्रयत्न करते है तो पाते हैं कि वे "एलिमेंट्री पार्टिकल" के गुणो को दर्शाते हैं।

मन की अनेक क्वाटम पर्ते हो सकती हैं। वैसे इस ब्रह्माण्ड मे 10 से 20 तक विभिन्न गुणों की क्वाटम पर्ते (फोल्ड) पायी जाती हैं। प्रत्येक क्वांटम फील्ड पूरा "स्पेस" होता है। तथा उसका विशिष्ट गुण होता है। इन फील्ड (क्षेत्र) के अतिरिक्त यहां कुछ नही होता। समस्त भौतिक ससार इसका बना होता है। विभिन्न क्वाटम फील्ड के जोडो के बीच भिन्न-भिन्न प्रकार की पारस्परिक क्रियाएं (इन्टरेक्शन) होती रहती है। इससे प्रत्येक क्वाटम फील्ड "एलिमेंट्री पार्टिकल" की तरह प्रकट होता है। एक ही प्रकार के "पार्टिकल" समान होते हैं तथा अप्रभेध होते है।

इन पार्टिकल्स की संख्या स्थिर नही होती है क्योंकि इन कणों का लगातार सृजन या विघटन अथवा रूपान्तरण (ट्रैन्स्म्यूटेशन) होता रहता है। फील्ड की पारस्परिक क्रिया (इन्टरेक्शन), सृजन, विघटन तथा रूपान्तरण के नियम निर्धारित करते हैं। क्वाटम फील्ड थ्योरी यह दर्शाती है कि एक ही समय मे दोनों धन तथा ऋण एलिमेंट्री पार्टिकल कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में सृजित या विघटित किये जा सकते है। क्वाटम फील्ड थ्योरी ने ही यह पूर्वानुमान लगाया था कि कोई भी आवेशित क्षेत्र दो प्रकार के कणों से

दर्शाये जा सकते है जो कि हर तरह से समान होते हैं सिवाय आवेश के। "इलेक्ट्रोन फील्ड" के मामले में क्वांटम फील्ड के ये सभी पूर्वानुमान सत्यता की कसौटी पर सही उतरे। अब हम जानते हैं कि इलेक्ट्रोन केवल ऋण आवेश का ही बना नही होता बल्कि धन आवेश का भी बना होता है। इसे "पोजिट्रोन" कहते है। केलिफोर्निया इस्टीट्यूट के कार्ल डी एन्डरसन ने इसकी खोज की। इसी प्रकार से एन्टीप्रोटोन की खोज की जा चुकी है। न्यूट्रोन परमाणु मे तो स्थायी रहता है लेकिन नाभिक के बाहर यह अस्थायी होता है। 18 मिनट में यह बीटा कण उत्सर्जित करता है तथा प्रोटोन मे बदल जाता है। इसी प्रक्रिया के समय न्यूट्रिनो को खोजा गया। इस प्रक्रिया के दौरान यह देखा गया कि प्रोटोन तथा इलेक्ट्रोन का सयुक्त भार न्यूट्रोन से 1.5 'इलेक्ट्रोन भार" कम होता है। अतः यह भार क्षय में चला जाता है। इस अपक्षय भार की ऊर्जा 780,000 इलेक्ट्रोन वोल्ट के लगभग होती है। इतनी ऊर्जा इलेक्ट्रोन तथा प्रोटोन की भी नही होती है। अपक्षय पदार्थ की ऊर्जा की विकट समस्या का समाधान पॉली के द्वारा खोजा गया कि परमाणु के नाभिक मे न्यूट्रोन के अतिरिक्त एक अन्य कण होना चाहिये जिसका द्रव्यमान (मास) शून्य हो तथा जिसमें विलुप्त ऊर्जा हो। एनरिको फर्मी ने इस अज्ञात कण का नाम "न्यूट्रिनो" दिया। न्यूट्रिनो में भी फोटोन की तरह घनत्व, भार, तथा चुम्बकीय क्षेत्र आदि भौतिक लक्षण नही पाये जाते हैं। इलेक्ट्रोन तथा प्रोटोन की तरह यह भी स्थायी कण माना जाता है।

भौतिक शास्त्री रुदर फर ने कहा कि मनुष्य की नाड़ी व्यवस्था पर न्यूट्रिनो का महासागर प्रभाव डालता है और प्रसिद्ध अन्तरिक्ष विज्ञान एक्सेल फरसोर्फ ने कहा कि अतीन्द्रिय संवेदन न्यूट्रिनो की भाति व्यापक मानसिक चेतना से सम्पन्न "माइन्डोन" नामक कणों द्वारा होता है। इन कणों द्वारा हमारा उपचेतन मन, ब्रह्माण्डीय चेतना के साथ जुड़ जाता है और सर्वज्ञ बन जाता है।

न्यूट्रिनो की सूर्य तथा अन्य नक्षत्रों से लगातार पृथ्वी पर वर्षा होती रहती है। प्रकाश का दसवां भाग इन न्यूट्रिनो कणों की ऊर्जा का ही बरसता है। लेकिन यह रात्रि मे आते हैं। मनुष्य के पूरे जीवन काल में उसके शरीर से लगभग 10^{23} (एक के आगे 23 शून्य) न्यूट्रिनो खेल खेलते हैं। कौन जानता है कि ये कण ही ब्रह्माण्डीय चेतना का मीडिया बनते हों ? नक्षत्र या विभिन्न ग्रह शायद ग्रेविटोन कणो के कारण हो भावनाओं पर असर डालते

है। गणित की शब्दावली में इनका अस्तित्व है, लेकिन क्या ग्रेविटोन की प्रायोगिक तौर पर खोजा जा सकेगा, यह प्रश्न अब भी बना हुआ है? ब्रह्माण्डीय चेतना में इनका क्या रोल होगा, इसका उत्तर हमें भविष्य के गर्भ मे ही मिल सकेगा।

प्रतिभाशाली गणितशास्त्री एड्रियां डाब्स ने न्यूट्रिनो के समान **'साइटोन''** नामक कणो की कल्पना की। उनके अनुसार साइट्रोन ही मस्तिष्क के न्यूरोन कणो के साथ जुड कर पराचेतना का मार्ग प्रशस्त करते है।

इसी प्रकार से अन्य कण भी हो सकते है जो अतिन्द्रिय मार्ग प्रशस्त करते हों।

अब प्रश्न है कि क्या कारण है कि परा-मन भूतकाल की घटनाओं (पूर्वजन्म) को जान लेता है तथा भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास ले पाता है?

इसका जवाब भी हम क्वाटम सिद्धान्त द्वारा दे सकते है। 1948 में वैज्ञानिक रिचर्ड पी. फेमा ने क्वाटम सिद्धान्त की एक गणितीय विवेचना की जिसमें दर्शाया कि एक **''एन्टी-पार्टिकल''** एक माइक्रोसेकेंड के छोटे से भाग मे स्पेस-टाईम मे पीछे की ओर गमन करता है। जब इलेक्ट्रोन तथा पोजिट्रोन का साथ-साथ जन्म होता है तो पोजीट्रोन की उम्र बहुत कम होती है। वह तुरन्त दूसरे इलेक्ट्रोन से टकराती है। इस क्रिया मे दोनो कणो का क्षय हो जाता है तथा गामा विकिरण निकलते है। फेमा सिद्धान्त मे केवल एक कण बनाया गया है इलेक्ट्रोन। लेकिन यही इलेक्ट्रोन स्पेस टाइम मे भूतकालिक गति के रूप मे पॉजिट्रोन होता है। इस सिद्धान्त पर फेमा को 1965 मे भौतिकी का नोबल पुरस्कार दिया गया।

जोन ए व्हीलर ने वस्तुओं की गति **''स्पेस-टाईम''** मे बताने के लिये मिन्कोस्की ग्राफ का उपयोग किया। इस ग्राफ मे किसी वस्तु का पथ **''वर्ल्ड लाइन''** के रूप में बनता है। व्हीलर ने कल्पना की कि एक इलेक्ट्रोन स्पेस टाइम मे आगे-पीछे हटता है तो उसकी एक निश्चित **''वर्ल्डलाइन''** होगी। वर्ल्ड लाइन की अविश्वसनीय गाठ बनेगी एक दानवाकार गेंद के रूप मे जो करोडों जगहो पर गुथी हुई होती है तथा एक समय रहित नोट (गांठ) मे समाप्त हो जाती है। यदि हम इसको कास्मिक टाइम-स्पेस पर क्रॉस सेक्सन ले (समय अक्ष के समकोणिक काटते हुए) तो हमें चतुर्विम जगत का चित्र प्राप्त होगा।

त्रि आयामी क्रॉस-सैकसन, एक आयामी समय अक्ष के साथ आगे बढ़ता है। और अब इस गतिमान सेक्सन पर घटनाएं नृत्य करती हैं। इलेक्ट्रोन के इस वर्ल्ड लाइन के सेक्शन या काट पर अविश्वसनीय गाठ करोड़ो "डासिंग प्वाइंट्स" में टूट जाती हैं, प्रत्येक उस जगह से मेल खाते हुए जहा कि इलेक्ट्रोन गाठ काटी जाती है। यदि क्रॉस सेक्सन उस जगह वर्ल्ड लाइन पर काटा जाता है जहां कि कण समय में आगे की ओर गमन है तो वह इलेक्ट्रोन होगा। यदि वर्ल्ड लाइन उस जगह से काटी जाती है जहा इलेक्ट्रोन समय में पीछे की ओर मुड़ रहा है, तो वह पोजीट्रोन होगा।

अत यदि क्वाटम भौतिकी किसी कण के या किसी भौतिक सत्ता के आकाश-काल में पीछे की ओर गमन करने को सिद्ध करती है चाहे वह एन्टी पार्टिकल ही क्यो नही हो, तो परा-मन यदि भूतकाल मे चला जाता है और पूर्वजन्म की घटनाओं को बताता है तो इसमें आश्चर्य नही होना चाहिये।

□□

चिकित्सा क्षेत्र की नूतन दिशाएं

इक्कीसवी सदी के निकट पहुँचते हुए भौतिकी ने हमें शरीर के अवलोकन के लिये नये-नये औजार दिये हैं। भौतिकी के इन औजारो से हम रक्त का कोशिका स्तर पर अवलोकन कर सकते हैं, मस्तिष्क की गतिविधियों का नक्शा खींच सकते है तथा अनेक असाध्य रोगों का निदान कर सकते है। भौतिकी के उपकरण जैसे कि लेजर, सुपर कन्डक्टर्स, माइक्रोवेव ट्रान्समीटर्स, चुम्बक, पार्टिकल एक्सेलेरेटर्स [त्वरित्र) अतिशीघ्र चिकित्सालयों में उपलब्ध होने लगेंगे।

ये मशीनें काफी सीमा तक एक चिकित्सक का कार्य करने लगेंगी। **'क्रिटोन का स्वचालित चिकित्सक'** एक ऐसी मशीन है जो अत्यन्त तीव्रता से कोशिकाओं का विश्लेषण करती है। यह मशीन 'फ्लो साइटोमीटर' उपकरण पर आधारित है।

क्रिटोन का स्वचालित चिकित्सक जिस तेजी से कोशिकाओं का अवलोकन करता है, वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है। यह मशीन केवल डेढ मिनट मे पचास हजार कोशिकाओं का अवलोकन कर देती है। क्रिटोन के स्वचालित मशीन में विभिन्न कोशिकाओं मे अन्तर निम्न प्रकार किया। पहले रक्त के नमूने मे प्रतिदीप्त टैगयुक्त **'मोनोक्लोनल एन्टी बॉडी'** का मिश्रण डाला गया। फिर प्रत्येक प्रकार की एन्टीबॉडी एक विशिष्ट प्रकार की कोशिका से, रोगन से अंकित करते हुए चिपका गई। जब इन कोशिकाओं को पंक्तिबद्ध एवं ट्यूब मे से गुजारा गया तथा लेजर से उद्भासित किया गया तो प्रत्येक कोशिका का रंग प्रतिदीप्त हो गया। यह प्रतिदीप्ति लाल, नीले, हरे तथा पीले रंग की थी। एक कम्प्यूटर **'फोटो-डिटेक्टर'** से जोड दिया गया था। इसने कोशिकाओं की रंगों के आधार पर पहचाना।

लोमा लिंडा के इम्यूनोलोजी केन्द्र के विज्ञानियों ने रोगियो की प्रतिरक्षित प्रणाली (इम्यून सिस्टम) का हाल ही में परीक्षण किया। उन्होंने 17

'मोनो क्लोनल-एन्टीबॉडी' का उपयोग किया। प्रत्येक एन्टीबॉडी श्वेत रक्त कणिका से सम्बन्धित थी। इन कोशिकाओ की सामान्य समष्टि मे परिवर्तन से प्रतिरक्षा प्रणाली में दोष यानि रोग का पता चल जाता था। एन्टीबॉडी के और अधिक प्रयोग से इस उपकरण द्वारा अनुपयोगी कोशिकाओं का यथा रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु, विषाणु यहां तक कि केन्सर कोशिकाओं का भी पता चल सकता है। क्रिटोन की यह स्वचालित मशीन यह बता सकेगी कि रोगी में विषाणु संक्रमण हुआ है अथवा केन्सर। यह मशीन यह स्वतः ही पता लगा सकेगी कि किस प्रकार का केन्सर मरीज को हुआ है तथा यह केन्सर किस अवस्था मे है ? यदि यह स्वचालित चिकित्सक (क्रिटोन मशीन) रोगी में कोई बात गम्भीर पाता है तो यह इर्न्टनिस्ट को सूचित कर देगा जो रोगी के शरीर के भीतर सूक्ष्म अवलोकन करेगा।

अब तक एक्स किरणो द्वारा शरीर के भीतर झांका जा सकता था लेकिन अब **'मेगनेटिक रेजोनेन्स इमेजिंग या 'एम. आर. आई.'** पद्धति का उपयोग किया जा सकेगा। **'एम. आर. आई.'** पद्धति चिकित्सा जगत मे क्रांति ला देगी।

एक्स किरणों के द्वारा अस्थि अथवा उपास्थि का ही चित्र लिया जा सकता था लेकिन **'एम. आर. आई.'** द्वारा शरीर के भीतरी कोमल भागों या उत्तकों का स्पष्ट चित्र खींचा जा सकेगा। यह एक क्रान्तिकारी कदम होगा। एम. आर. आई. पद्धति शक्तिशाली चुम्बकत्व तथा रेडियो तरंगों का उपयोग करती है।

एम. आर. आई. मशीन एक विशाल कपड़ा सुखाने वाली मशीन की तरह दिखाई पड़ती है। मध्य मे एक बडी गोलाकार सुरंग होती है। रोगी को पलंग पर लेटा दिया जायेगा तथा उसका सिर एक आरामदायक कपनुमा गर्त में टिका दिया जायेगा। तब पलंग को धीरे-धीरे मशीन के काफी भीतर ले जाया जायेगा। वहा रोगी का शरीर सुपर-कंडक्टिंग मशीन से उत्पन्न तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र मे डूबा होगा। रोगी को यह क्षेत्र महसूस नही होगा।

हमारे शरीर के कोमल उत्तक 'हाइड्रोजन' परमाणुओं से भरपूर है। जैसे ही इन्हे मशीन के चुम्बकीय क्षेत्र से उद्भासित किया जायेगा तो इनके नाभिक एक दिशा मे उसी तरह पंक्तिवद्ध हो जायेंगे जैसे कि कोई चुम्बकीय

छड़ लौह कणों को जमाती है। अवलोकन के सारे समय एक 'माइक्रोवेव-जनित्र' तीव्र रेडियो स्पन्द उत्पन्न करता है। इससे हाइड्रोजन के नाभिक पंक्ति से बाहर खिसक जाते हैं। ये कण जब पुन: अपनी स्थिति में आते हैं तो मन्द रेडियो संकेत उत्पन्न करते हैं। ये संकेत शरीर के भीतरी अंगों की अत्यन्त स्पष्ट तस्वीर खींचते हैं।

अमरीका में पहले ही नौ सौ तस्वीर की प्रणालियां काम में ली जा रही हैं। सामान्य तथा असामान्य उत्तकों की तस्वीरों में और अधिक अंतर स्पष्ट करने के लिये एक रोगी के रक्त में दुर्लभ मृदा (रेयर अर्थ) धातु **'गेडोलिनियम'** प्रवाहित कराते हैं।

और अधिक शक्तिशाली एम आर. आई. तस्वीरों के लिए हाइड्रोजन के स्थान पर **'सोडियम'** को काम में लिया जाता है। सोडियम चित्रण **'कैंसर'** का पता लगाने में अधिक क्षमतावान है क्योंकि कैंसर कोशिका में सामान्य कोशिका से चार गुना अधिक सोडियम पाया जाता है।

एम. आर. आई. तकनीक के अतिरिक्त एक और तकनीक विकसित की गई है। यह कहलाती है **'मेगनेटिक रेजोनेन्स स्पेक्ट्रोस्कोपी'**। इस नई तकनीक से शरीर के रसायन विज्ञान को समझा जा सकता है। जबकि **'एम. आर. आई.'** तकनीक से शरीर को शारीरीय (एनेटोमिकल) विज्ञान को समझा जा सकता है। सेन फ्रांसिस्को में **'मेगनेटिक रेजोनेन्स स्पेक्ट्रोस्कोपी'** का उपयोग हाथ-पांव में पेशीय-थकान के अध्ययन में किया जाता है। भविष्य में मेगनेटिक रेजोनेन्स स्पेक्ट्रोस्कोपी से हृदय गति रुकावट (हार्ट अटेक) तथा हृदयाघात के निदान में बड़ी सहायता मिलेगी। 2001 तक एम. आर इमेजिंग तथा एम. आर. स्पेक्ट्रोस्कोपी में तालमेल बैठाया जा सकेगा।

जनरल इलेक्ट्रिक के विज्ञानी एम. आर. आई. तकनीक को और विकसित करने में लगे हैं। उनका प्रयास एम. आर. की तीव्र गति से तस्वीरें लेने का है। इससे चल-चित्रों का विकास होगा। इस प्रकार के **'एम आर. चलचित्र'** शरीर के किसी भीतरी अंग की गति का चित्र ले सकेंगे। ये एम. आर. चलचित्र हृदय के लगातार फैलने तथा सिकुड़ने का चित्र ले सकेंगे। लास-एन्जल्स के सिडार-सिनाई चिकित्सा केन्द्र पर एम. आर. चल चित्र

तकनीक का उपयोग भी किया जाने लगा है। इससे चिकित्सक यह पता लगा लेते हैं कि हृदय रोगी की हृदय की पेशियां किस सीमा तक क्षतिग्रस्त हुई है तथा इसका कितना प्रभाव है? 21वीं सदी में यह तकनीक आम हो जायेगी।

21वीं सदी में कदम रखते एक और चिकित्सा पद्धति विकसित हो जायेगी। यह है 'एम. ई. जी.' 'मेग्नेटो-एनसिफेलोग्राफी'। 'एम. ई. जी से मस्तिष्क की गतिविधियों का नक्शा खींचा जा सकेगा। इस तकनीक से यह पता चलेगा कि कौनसे 'न्यूरोन' के समूह उपयोगी है तथा वे कितने सक्रिय है? यदि हम मानव-मस्तिष्क की तुलना एक विशाल तथा जटिल टेलीफोन नेटवर्क से करें तो एम. ई. जी. से यह पता चल सकेगा कि सबसे अधिक फोन किस क्षेत्र में किये जाते हैं। मस्तिष्क के किस क्षेत्र में ये न्यूरोन अधिक सक्रिय हैं। यह तकनीक मनश्चिकित्सक के लिये अत्यन्त उपयोगी साबित होगी। एम. ई. जी. अभी प्रायोगिक स्तर पर है लेकिन इससे मस्तिष्क में की अपस्मारी (एपिलेप्टिक) गतिविधियों का अध्ययन होने लगा है। एम. ई. जी. से अलजाइमर रोग का निदान मस्तिष्क की चोट का शीघ्र उपचार किया जा सकेगा। इससे अनेक व्यवहारगत समस्याओं को समझा जा सकेगा।

एम. ई. जी. तकनीक स्नायु कोशिकाओं में उत्पन्न विद्युत धारा पर निर्भर करता है जबकि वे सक्रिय होते हैं। जब कई स्नायु कोशिकायें सक्रिय हो जाती है तो इनसे इतनी विद्युतधारा बहने लगती है कि सिर के बाहर इनको मापा जा सकता है। इन संकेतों के मापन का परम्परागत तरीको का **'इलेक्ट्रो एन्सिफेलो ग्राफ'** है लेकिन इस पद्धति में कपाल से विद्युतधारा विचलित हो जाती है, अतः विद्युतधारा के स्रोत का पता लगाना कठिन हो जाता है।

लेकिन एम. ई. जी. में विद्युतधारा में उत्पन्न चुम्बकीय क्षेत्र का उपयोग किया जाता है। यद्यपि यह चुम्बकीय क्षेत्र अत्यन्त क्षीण होता है लेकिन इसे चुम्बकमापी का उपयोग करके अंकित किया जा सकता है। यह चुम्बकमापी एक प्रणाली का उपयोग करती है, जिसका नाम है—**'सुपर कंडक्टिंग क्वांटम इंटरफेरेंस डिवाइस'** अर्थात् स्क्वीड वर्तमान में रोगी के सिर पर 14 स्क्वीड डिटेक्टर कुण्डलियां लगाई जाती है लेकिन पूरी तरह अवलोकन

करने के लिये इन्हे वार-वार सिर पर घुमाना पडता है जो कि एक अत्यन्त थकान भरा कार्य है। विज्ञानी हिर्शकोफ यह आशा करते है कि वे एक ऐसा टोप (हेल्मेट) का निर्माण करने में सफल होंगे जिसमें सौ या इससे अधिक 'स्क्वीड' लगाये जा सकेंगें। स्क्वीड लगे टोप पहने रोगी को एक अंधेरे कमरे में लेटा दिया जायेगा। उसे मेहरावी छत की ओर समय-समय पर उत्पन्न हुए कौंध को देखने अथवा लघु उच्च आवृत्ति की ध्वनि को सुनने के लिये कहा जायेगा। ये उद्दीपक मस्तिष्क की स्नायु कोशिकाओं से अंकित करने योग्य अनुक्रियायें (रिस्पांस) उत्पन्न करेंगे। कम्प्यूटर संकेतों से मस्तिष्क की गतिविधियों का चित्र उत्पन्न करेगा। इससे डॉक्टर रोगी का निदान कर पाने में सक्षम होगा।

कैंसर के रोगियों का निदान करने मे एक नई पद्धति विकसित की जा रही है और वह है 'प्रोटोन किरण' का उपयोग करते हुए विकिरण चिकित्सा। इसमे प्रोटोन-किरणो का प्रहार ट्यूमर पर होगा।

वर्तमान विकिरण पद्धति मे एक दोष यह है कि विकिरण का प्रहार करते हुए कैंसर कोशिकाओं के साथ-साथ कुछ सामान्य तथा स्वस्थ कोशिकाएँ भी चपेट में आ जाती है। यह बात सच है एक्स-किरण तथा रेडियो धर्मी कोवाल्ट निदान मे। यहां तक कि 'न्यूट्रोन-थिरेपि' मे भी यही बात पाई जाती है। लेकिन प्रोटोन-थिरेपि मे यह दोष नही है।

'प्रोटोन-थिरेपि' का लाभ यह है कि प्रोटोन किरणों की अधिकतम मात्रा 'ट्यूमर' पर अचूक रूप से केन्द्रित की जाती है। इससे स्वस्थ कोशिकाओं के नष्ट होने की सम्भावना बहुत कम हो जाती है।

'प्रोटोन-थिरेपी' से मस्तिष्क, मेरुदण्ड तथा आख के कुछ कैंसर का इलाज करने में प्रायोगिक स्तर पर सफलता हासिल हो चुकी है। लोमा लिंडा चिकित्सा केन्द्र पर प्रोटोन-थिरेपी केन्द्र खोला जा रहा है।

21वी सदी मे 'प्रोटोन-थेरेपी' केन्सर के इलाज के लिये वरदान साबित होगी।



यांत्रिक कायाकल्प

मानव और मशीन का समागम अब तक विज्ञान कथाओं में ही संभव था लेकिन अब इसने ठोस धरातल अपना लिया है। मानव वैज्ञानिक प्रगति के जरिये शनैः शनैः मानव और मशीन के मिले-जुले प्राणी की ओर कदम बढ़ा रहा है और इक्कीसवीं सदी के अन्त तक यह कहना असभव होगा कि यह मानव है या 'मानव-मशीन'। वैज्ञानिक भाषा में मानव-मशीन की चरम सीमा होगी 'साइबर्ग'। किसी साइबर्ग मे केवल मस्तिष्क ही सजीव होता है लेकिन शेष भाग निर्जीव या मशीन होते हैं। कुछ विज्ञानियो ने 'मानव-मशीन' के इस प्राणी को **'बायोरोबोट'** नाम दिया है।

लेकिन **'बायोरोबोट'** अथवा साइबर्ग तो अन्तिम अवस्था है, हम बात करेंगे इस दिशा में किये गये प्रारम्भिक वैज्ञानिक प्रयासों की।

यह किसी से छिपा नही है कि मानव शरीर के कुछ अगों को बदला जा सकता है। मानव शरीर में कुछ नष्ट हुए अंगों की जगह कृत्रिम या निर्जीव अंग प्रत्यारोपित किये जा सकते हैं। अब विज्ञानी शरीर के अधिकांश हिस्सो को प्रत्यारोपित करने में सक्षम है। कृत्रिम टांगे, कृत्रिम बाहें, कृत्रिम नाक, कान, दात, आंख, कंठ, चेहरा, बाल, कूल्हे, स्तन तथा शिश्न आदि। इसी प्रकार से शरीर के भीतरी अगों में हृदय, यकृत, गुर्दे फेफड़े, अग्नाशय, स्नायु, रक्त तथा रक्त वाहिनियां, मस्तिष्क के उत्तक, अण्डाशय (ओवरीज) तथा वृषण आदि को कृत्रिम अंगों से प्रत्यारोपित किया जा सकता है। अस्थियो मे अस्थि कुहनि, उपास्थि, घुटना स्नायु (लिगामेंट), अंगुलिया, पेशिया, अस्थि मज्जा, कण्डरा (टेन्डन) आदि को भी आज बदला जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते है कि केन्द्रीय स्नायु संस्थान के अलावा हम शरीर के करीब-करीब सभी अगों को बदल कर कृत्रिम अंग प्रत्यारोपित कर सकते है। इसमे कुछ कमियां भी है। टाइटेनियम दन्त तथा प्रत्यारोपित अंग

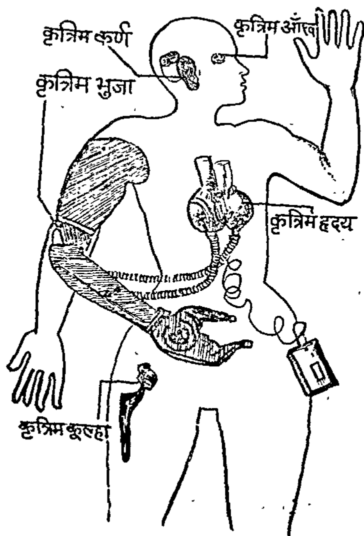
स्वाभाविक अंगों की तरह ही कार्य करते है लेकिन कृत्रिम-टांगे तथा स्तन इतनी अच्छी तरह कार्य नही करते। इसके अलावा प्रत्यारोपण की प्रक्रिया भी अत्यन्त खतरनाक है। क्योंकि हमारा शरीर किसी बाहरी वस्तु को ग्रहण नहीं करता। यह तभी संभव है जब शरीर की प्रतिरक्षा को कम किया जाय। अतः प्रतिरक्षा प्रणाली को दबाये रखने के लिये प्रतिरक्षा-दमनात्मक (इम्यूनो सप्रेसिव) दवाओं की आवश्यकता होती है। तभी हमारा शरीर कृत्रिम-अंगों को ग्रहण करता है। अतः प्रत्यारोपण में संक्रमण का बड़ा भारी खतरा रहता है। लेकिन ये समस्याएं ऐसी नही है जिनका हल नही तलाशा जा सकता है। इक्कीसवीं सदी तक पहुंचते-पहुंचते ये समस्याएं हल होने की संभावनाएं है। प्रत्यारोपण के क्षेत्र में हम कितना सफल हो पाये है। अब हम इस पर विचार करेंगे।

त्वचा-रोपण (स्किन-ग्राफ्ट)—इसमे शरीर के एक हिस्से से त्वचा लेकर दूसरे हिस्से मे लगाई जाती है। त्वचा-रोपण 1930 में प्रारम्भ हुआ था। द्वितीय विश्व युद्ध तक इसमे महारत हासिल करली गई थी लेकिन उस समय शरीर के स्थान बहुत कम से त्वचा रोपण हो पाता था। इसके अलावा यह यह कार्य जोखिम भरा था। त्वचा-प्रत्यारोपण ने 1980 में एक नया मोड़ लिया। अब 'संश्लिष्ट-त्वचा' तैयार की जाती है। इसमें रोगी की कुछ त्वचा-कोशिकाओं को पृथक कर इसे संश्लिष्ट किया जाता है जब तक कि पूरी चादर नही बन जाती। फिर इसका प्रत्यारोपण किया जाता है। आजकल यू. एस. बायोमर्फेम टेक्नॉलाजी कम्पनी संश्लिष्ट-त्वचा का निर्माण कर रही है। संश्लिष्ट-त्वचा की एक वर्ग मीटर का मूल्य चार लाख पचीस हजार रुपये है। चार से छ सप्ताहों मे एक वर्ग मीटर त्वचा संश्लिष्ट हो जाती है।

चेहरा प्रत्यारोपण—यदि किसी भीषण दुर्घटना मे किसी व्यक्ति का चेहरा बुरी तरह से क्षतिग्रस्त हो गया हो तो उसे ठीक किया जा सकता है। यह पाया गया है कि अस्थि की कोशिकाएं स्वतः ही टाइटेनियम धातु की सतह से जुड़ जाती है। इससे शल्य चिकित्सक के लिये यह सम्भव हो गया कि रोगी की शेष अस्थियों में स्थाई फिक्चर्स (कृत्रिम रचनाएं) लगाये जा सकें। सिलिकोन के कृत्रिम अवयव (प्रोस्थेसेज) लगाये जा सकते है। यह प्रक्रिया अत्यन्त धीमी, जोखिम भरी तथा कीमती है। इसके ऑपरेशन में बीस हजार रुपये का खर्चा आता है। स्वीडिश कम्पनी नोबेलफार्मा मे चेहरे को सुधारा जाता है। यहा स्थाई रूप से कृत्रिम दन्त लगाये जाते है।

आंख प्रत्यारोपण—मोतियाबिंद के ऑपरेशन आम बात हो गई है। आंख मे प्लास्टिक के 'इन्ट्रा ऑक्यूलर लेंस' लगाये जाते है इसकी कीमत दो हजार रु. है। कोर्निया-प्रत्यारोपण की कीमत पच्चीस से पचास हजार रुपया है।

बाल प्रत्यारोपण—इसमे सिर की खाल को भीतर से सिलिकॉन के गुब्बारे से फैलाया जाता है तथा बिना बालों वाला हिस्सा हटा दिया जाता है। इसके स्थान पर फैलाया हुआ हिस्सा लगा दिया जाता है। एक अन्य विधि मे सिर की खाल की जड़ को सिर के सबसे ऊपरी हिस्से पर प्रतिरोपित



किया जाता है। लेकिन इसमें परिणाम इतने उत्साह वर्धक नहीं रहे। 'एकाइलिक' वालों का प्रत्यारोपण जोखिम भरा है।

कृत्रिम भुजाएं तथा हाथ—एक प्रारंभिक भुजा कोहनी के नीचे से प्रारम्भ होती है। यह कृत्रिम भुजा प्लास्टिक फॉम तथा धातु के तार से बनी होती है। इसके बनने में दो सप्ताह लगते हैं तथा इसमें सात हजार पांच सौ रुपयों का खर्च आता है। लेकिन इसका नियंत्रण दूसरी ओर के कंधे पर लगाये पट्टों से होता है लेकिन नवीनतम मॉडल में 'मायो-इलेक्ट्रिक' नियंत्रण होता है। इसमें शेष पेशियों से उद्दीपन विद्युत-संकेतों में बदल दिये जाते हैं। हग स्टीपर कम्पनी एक कृत्रिम-कोहनी बासठ हजार पांच सौ रुपये में बेचती है। अमेरिकन मोशन कट्रोल कम्पनी कृत्रिम कोहनी के एक लाख सत्तर हजार रुपये लेती है। कृत्रिम हाथों ने अभी पूर्णता हासिल नहीं की है लेकिन इस दिशा में प्रयास जारी है। शोधकर्त्ता **'बायोनिक्स'** की ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं। इस दशक के प्रारम्भ होते-होते उटा मेकेनिकल इंजिनियर स्टीफेन जैकोबसन ने एक **'माइक्रो प्रोसेसर चालित प्लास्टिक भुजा'** का निर्माण किया है जिसे रोगी के कंधे पर लगा दिया जाता है तथा जहां अंगच्छेदन एम्प्यूटेशन हुआ है वहां की शेष पेशियों से इलक्ट्रोड जोड दिये जाते हैं। जब ये पेशिया संकुचित होती है तो क्षीण विद्युत आवेश उत्पन्न होते है लेकिन ये आवेश कोहनी घुमाने, हाथ खोलने, तथा अंगुलियां घुमाने के लिये पर्याप्त होते हैं। इन **'कृत्रिम-हाथों'** के जरिये व्यक्ति किसी किताब के पन्ने पलट सकता है तथा बीस पौंड का भार उठा सकता है। यह पद्धति खर्चीली होने के कारण जेकोबसन का ध्यान **'रोबोट-तकनीक'** की ओर केन्द्रित हुआ। इस तकनीक पर आधारित **कृत्रिम-भुजा'** अद्भुत है। यह भुजा चार अगुलियों वाली यूनिट है जिसमें लाखों डिटेक्टर्स हैं। उस समय आप आश्चर्य चकित रह जायेंगे जब ये अंगुलिया कुछ महसूस करने का कृत्रिम अनुभव देंगी। ये **कृत्रिम-अंगुलियां'** इतनी अधिक दक्ष है कि किसी वाद्य यंत्र हार-मोनियम या पियानो को बजा सकती है। किसी पेचकस को घुमा सकती हैं तथा किसी जूते की डोरी को बांध सकती है। इस शताब्दी के अंत तक इन्हें और अधिक सरल, हल्का तथा महसूस ने योग्य बनाया जा सकेगा।

कृत्रिम टांगें तथा पांव—जापानियों ने मायोइलेक्ट्रिक तथा रोबोटिक टांगों का निर्माण किया है लेकिन ये बहुत भारी है। जे. हंगर जो कृत्रिम

टांगों के थोक विक्रेता है, ने इसके हल्के पन तथा स्थाईपन पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। उनकी **'अल्ट्रा रोलाइट'** टांगे **'कार्बन-तन्तु'** की बनी हुई है तथा जोड़ (ज्वाइंट्स) **ड्युरेल्यूमिन'** के बने हुए हैं। इनका भार 1 कि.ग्रा. से 3 कि. ग्रा. के बीच है। ये जोड़ घुटनों तथा टखनों पर लगाये जाते है। इनकी कीमत बाइस हजार पाच सौ तथा 62 हजार पांच सौ है। हंगर ने एक क्रांतिकारी **'फर्वाटम'** पांव भी बनाया है। जो दो स्प्रंग प्लेटे का बना हुआ है। ये स्प्रंग-प्लेटें काच के तन्तु तथा रेजिन की बासठ पतली तहो से बनी हैं। यह न केवल वास्तविक पाव दिखाई पड़ता है बल्कि उसी तरह कार्य भी करता है।

कर्ण-प्रत्यारोपण—अब बहरे भी सुन सकते हैं। केवल कण के आन्तरिक भाग मे **"कृत्रिम-कोक्लिया'** प्रतिरोपित करने की जरूरत है। उन लोगों ने जिन्होंने कभी आवाज तक नही सुनी, वे भी सुन सकते है। एक बाइस चेनेल का उपकरण तार से किमी अभिग्राही (रिसिवर) से जोड़ा जाता है जो कान के पीछे की त्वचा के भीतर लगाया जाता है। तब दोनो का सम्बन्ध एक **'प्रोसेसर'** से किया जाता है जिसे वक्ष स्थल की जेब में ले जाया जा सकता है, अभिग्राही ध्वनि को पकड़ता है तथा इसे अनुवाद के लिये प्रोसेसर में भेजता है। प्रोसेसर इन संकेतों को आन्तरिक कर्ण उपकरण मे भेजता है। यह उपकरण ध्वनि को 22 उपयोगी आवृतियो मे बाटता है तथा रोगी के श्रवण तंत्रिका को उद्दीपित करता है।

ओटोलेरिन्जोलोजिस्ट डगलस मेटोक्स कहते हैं कि यह सिस्टम पूर्ण नहीं है लेकिन आने वाले दशक मे श्रवण उपकरण इतने परिष्कृत होंगे कि उन्हें शरीर के भीतर गहराई में लगाया जा सकेगा। कुछ ऐसे रोगी भी है जिनकी श्रवण तंत्रिका पूर्णतया नष्ट हो चुकी है। ऐसे रोगियों के लिये कॉक्लियर उपकरण से हमें कोई खास मदद नही मिलेगी। हमे परिष्कृत उपकरण को रोगी के मस्तिष्क में लगाना होगा। यह उस जगह लगाना होगा जिसे हम **'आडिटरी न्यूक्लिअस'** कहते है। मस्तिष्क का यह क्षेत्र ही हमारे श्रवण को नियन्त्रित करता है। इससे हम श्रवण तंत्रिका से पूर्णतया छुटकारा पा लेंगे।

लेकिन फिलहाल हमे वर्तमान उपकरणों से ही संतुष्ट होना पड़ेगा। मध्य कर्ण के क्षति ग्रस्त होने पर कान के पीछे सिर पर श्रवण उपकरण **'टाइटेनियम पेच'** लगाना होगा। इसकी कीमत पच्चीस हजार रुपया है।

आन्तरिक कर्ण में क्षति होने पर कृत्रिम-कोक्लिया' लगाना होगा। इस 'इनरेड' (कोक्लिया) की कीमत दो लाख पच्चीस हजार है। यह उपकरण ध्वनि तरंगों को विद्युत संकेतों मे बदल देता है तथा श्रवण तंत्रिका में पहुंचाता है। इससे किसी बहरे व्यक्ति को स्पष्ट सुनाई पड़ने लगता है।

कंठ-प्रत्यारोपण—कंठ में कैंसर होने पर इसे हटाना पड़ता है। 1983 से कंठ के स्थान पर 'सिलिकोन-ब्लोम-सिंगर' कृत्रिम स्वर-वाल्व प्रतिरोपित किये जाते है। इनकी कीमत एक हजार रुपया है। इसमें दो कमियाँ है—कृत्रिम वाल्व के साथ-साथ एक प्लास्टिक 'ट्रेकिओस्टोमा' नामक उपकरण और लगाना पड़ता है ताकि अचानक घुटन को रोका जा सके। इसकी कीमत तीन हजार सात सौ पचास रुपया है। यह भोजन के कारण तीन महिनो मे खराब हो जाता है अत. इसे बदलना पड़ता है।

शरीर के भीतरी अंगो का प्रत्यारोपण किस प्रकार होता है? इसका विवरण निम्न हैं—

हृदय-प्रत्यारोपण—हृदय का प्रथम प्रत्यारोपण इक्कीस वर्ष पहले हुआ था। पिछले वर्ष केवल ब्रिटेन मे हृदय के 244 प्रत्यारोपण किये गये थे। लेकिन हृदय की शल्य क्रिया अब भी जोखिम भरी है। हृदय-प्रत्यारोपण के केवल सत्तर प्रतिशत रोगी एक वर्ष से अधिक जीवित रह पाते है अधिकतम आठ साल तक ये रोगी जीवित रहे। इसके अतिरिक्त हृदय के दाताओं की भी कमी रही। ब्रिटेन मे इन्तजार कर रहे चार रोगियो मे से एक रोगी केवल इसी कारण मर जाता है। लेकिन अब इस समस्या का निदान कृत्रिम-हृदय' प्रत्यारोपित करके हो गया है। 'कृत्रिम हृदय का 'जर्विक 8' आधुनिकतम मोडल है। यह लोगो को उस समय तक जीवित रखता है जब तक कि उन्हे किसी और का वास्तविक हृदय प्राप्त नही हो जाता। अभी तक कोई ऐसा स्थाई हृदय प्रत्यारोपित नहीं किया गया है लेकिन एक नया $\frac{3}{4}$" बाई $\frac{1}{2}$ इंच का 'हीमो पम्प' लगाया जा सकता है। यह बिना किसी बड़ी शल्य क्रिया के हृदय के बायें निलय (वेंट्रिकल) में प्रत्यारोपित किया जा सकता है। यह हृदय के पंपिंग कार्य को सम्हाल लेता है। इसकी कीमत चालीस हजार रुपया है।

जर्विक कृत्रिम हृदय की कमी यह है कि यह प्लास्टिक तथा टाइटेनियम का बना होता है। इससे रक्त का थक्का बन जाता है। इससे रुक-रुक कर

स्ट्रोक्स होने लगता है। इसके अतिरिक्त हृदय शरीर में रक्त वायु का उपयोग करते हुए डायफ्राम को संकुचा कर और फैलाकर भेजता है इससे रोगी को चौबीस घंटे वाह्य पम्प के सहारे रखना होता है।

विज्ञानी इस दिशा में प्रयास जारी रखे हुए है। निर्माण की संशोधित तकनीक तथा नये पदार्थ ने अतिसूक्ष्म दरार को पाट दिया है तथा उस पदार्थ को हटा दिया है जिससे रक्त का थक्का जमता है। नई पावर प्रणाली ने भारी भरकम पम्प का स्थान ले लिया है। ये पम्प छोटे तथा पोर्टेबल होंगे ताकि रोगी कुछ घंटों वाहर घूम फिर सके।

आगामी कुछ ही वर्षों में हम इस कृत्रिम पम्प प्रणाली से भी छुटकारा पा लेंगे। इस पम्प प्रणाली का स्थान अब **'हाइड्रोलिक्स'** ले लेगी। रोजर ब्लिस के अनुसार एक छोटा **'हाइड्रोलिक-पम्प'** हृदय के निलयों के बीच लगाया जायेगा जो प्रति मिनट एक सौ चालीस बार आगे पीछे होता है। इससे हृदय में एक तरफ रक्त आता है, फिर दूसरी तरफ पहुंचता है। आन्तरिक बेटरी प्रणाली रोगी को चलने-फिरने की और अधिक स्वतंत्रता प्रदान करती है। रोगी के हृदय को स्वस्थ रखना अत्यन्त आवश्यक है। रोगी की अचानक हृदय गति रुकने की दशा में **'आन्तरिक डिफाइब्रिलेटर'** का सहारा लिया जाता है। इलेक्ट्रोड की सहायता से इन्हें सीधा हृदय-पेशियों से सम्बन्धित कर दिया जाता है।यदि हृदय की धड़कन अनियमित होने लगती है तो यह प्रणाली 750 वोल्ट का झटका देकर इसे नियमित करती है। अब एक ऐसी प्रणाली विकसित की जा रही है जो **'फिब्रिलेशन'** होने से पूर्व ही हृदय के इस गहरे संकट को भांप लेगी।

फुफ्फुस-प्रत्यारोपण, हृदय-प्रत्यारोपण से अधिक कठिन है। दोनों की कमियां समान है। कृत्रिम-फेफड़ा जीवन की आयु केवल पांच वर्ष और बढ़ाते है। फुफ्फुस-प्रत्यारोपण एकल या युग्म दोनों का हो सकता है।

वृक्क का प्रत्यारोपण आसान है। केवल दाता की समस्या होती है। ब्रिटेन में वृक्क प्रत्यारोपण की कीमत दो लाख पच्चीस हजार रुपया है।

यकृत-प्रत्यारोपण सबसे कठिन है। आने वाले वर्षों में 'सिरोसिस' तथा हिपेटाइटिस' के रोगियों का यकृत भी बदला जा सकेगा। ज्यादातर मामले बच्चों से सम्बन्धित होते है। यकृत-प्रत्यारोपण में सात लाख तक का खर्चा आता है।

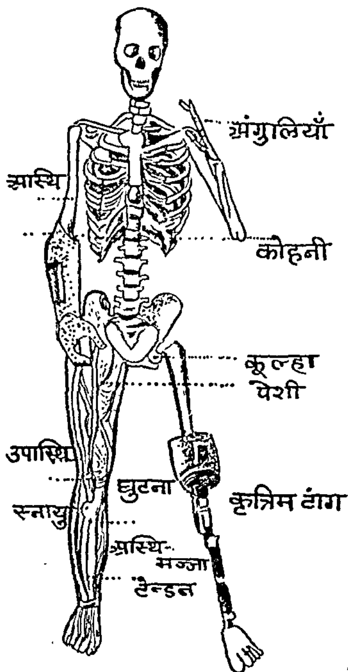
मस्तिष्क के केवल उत्तकों का प्रत्यारोपण संभव है। इसमें किसी गर्भच्युत (अबोर्टेड) भ्रूण की कोशिकाओं का प्रत्यारोपण किया जाता है। इससे मस्तिष्क के 'पार्किन्सन्स रोग' का इलाज संभव है क्योंकि मस्तिष्क मे 'डोपेमाइन' उत्पन्न करने की क्षमता पैदा हो जाती है। जो लोग मूत्र-रोग से पीड़ित होते है तो उनके **कृत्रिम-ब्लेडर-स्फिंक्टर'** लगाये जा सकते हैं। यह रोग मेरु दण्ड चोट या **'प्रोस्टेट'** शल्य क्रिया से भी उत्पन्न हो जाता है। स्फिंक्टर एक खोखली संरचना होती है। जिसमें द्रव भरा रहता है। इसे वृषण कोष (स्क्रोटम) या लेबिया मेजोरा से जुडे पम्प द्वारा नियंत्रित किया जाता है। जब पम्प दबाया जाता है तो वह संरचना खाली हो जाती है तथा खुल जाती है। जब पम्प से दबाव हटाया जाता है तो यह पुनः भर जाती है। प्रत्येक स्फिंक्टर की कीमत पैंसठ हजार रुपया है।

अब तो **'संश्लिष्ट-रक्त'** का भी प्रयोग किया जाने लगा है। लेकिन इसका आपात स्थिति में ही उपयोग किया जाता है जब कि कोई रक्त-दाता उपलब्ध नही हो। संश्लिष्ट रक्त का एक प्रामाणिक प्रत्यारोपण अब भी दूर है। जापानी **फ्लूओसोल-डी. ए'** का उपयोग करते हैं। जो रोगी रक्त-परिवहन में खराबी से पीड़ित होते है, उनमे नई कृत्रिम रक्त-वाहिनिया प्रतिरोपित की जाती है। खास तौर से **'आर्टेरिओस्क्लेरोसिस'** तथा **'एन्जिना'** के रोगियों में रक्त वाहिनियां नई लगाई जाती है, रक्त वाहिनियां न केवल मनुष्य बल्कि जानवरो में भी प्रतिरोपित की जा सकती है। रक्त वाहिनियो के साथ अस्वीकृति की समस्या नही उत्पन्न होती है। लेकिन वे वेस्क्यूलर शल्य चिकित्सक जो **'बाइपास'** आपरेशन करते है, कृत्रिम-ट्यूब का प्रत्यारोपण अधिक पसन्द करते हैं। ये **'कृत्रिम रक्त-वाहिनियां डेक्रोने या 'पोलोटेट्रो इथाइलीन'** की बनी होती है। इनसे संक्रमण या अस्वीकृति की समस्या बहुत कम उत्पन्न होती है।

क्षतिग्रस्त तन्त्रिकाओ को पुनः वृद्धि के लिये प्रेरित किया जा सकता है। इन्हें ग्राफ्टेड पेशियों से या माइक्रोचिप्स से जोड़ा सकता है।

इसी प्रकार से महिलाओं में सिलिकोन के बने हुए **'कृत्रिम-स्तन'** प्रतिरोपित किये जा सकते है। इसमे एक छिद्र होता है जिससे सिलिकोन द्रव डाला अथवा निकाला जा सकता है। महिलायें इससे अपनी सुन्दरता को बनाये रख सकती है। केवल ब्रिटेन मे हर साल पचास हजार वाह्य-कृत्रिम

स्तन प्रतिरोपित किये जाते है। प्रत्येक की कीमत 1750 रु. है लेकिन ये दो से पांच वर्ष तक कार्य करते है।



1985 में एक फ्रांसिसी महिला ने अण्डाशय अपनी भुजाओं में प्रतिरोपित करवाया ताकि वह पीठा के कैन्सर में विकिरण-थिरेपी के दौरान उत्पन्न बन्ध्यता से बचा जा सके। अण्डाशय की तरह हार्मोन वितरक उपकरण सिलास्टिक कैप्स्यूल के रूप में कई वर्षों से प्रतिरोपित किये जा रहे हैं। लेकिन अब कृत्रिम अण्डाशय का स्थान **'टेस्ट ट्यूब बेबी'** ने ले लिया है। *ब्रिटेन में अब हर वर्ष छ हजार महिलाएं भ्रूण प्रतिरोपित करवाती हैं।*

इसी प्रकार पुरुषों में कई वर्षों से 'सिलिकोन **वृषण**' लगाये जा रहे हैं। *इनकी कीमत (एक जोड़ा) दो हजार रुपये है। इस वर्ष एक चीनी* डाक्टर ने 13 रोगियों में वृषण के प्रत्यारोपण किये।

अस्थि-प्रत्यारोपण विभिन्न *पदार्थों द्वारा सफलता पूर्वक* किया जा सकता है। विशेष तौर से कार्बन तथा कोबाल्ट क्रोम मिश्रधातु का उपयोग *किया जाता है।* इसमें कमियां यह है कि व्यक्ति की बेचैनी संक्रमण टूट-फूट का खतरा रहता है। लेकिन शोध द्वारा यह प्रत्यारोपण तीस वर्षों तक टिका होने की आशा है। वर्तमान में अस्थि का प्रत्यारोपण युवा में अठारह महिनों तक टिकता है, तथा प्रौढ़ों में आठ से दस वर्ष तक। **'कृत्रिम-अस्थि'** का यह नया पदार्थ **'पोली इथाइलीन'** तथा **'हाइड्रोक्सि एपटाइट'** के समिश्रण में बना है. *यह पदार्थ अस्थि के स्वाभाविक वृद्धि को भी प्रेरित करती है।*

उपास्थि (कार्टिलेज) मस्तिष्क कोशिकाओं की तरह जन्म के बाद *पुनर्निर्मित नहीं की जा सकती लेकिन गर्भपात हुए शिशु के उपास्थि-कोशिकाओं* को पुनर्जीवित किया जा सकता है। अगले पांच वर्षों में ही पहला **'उपास्थि-प्रत्यारोपण'** संभव है।

स्नायु भी कृत्रिम प्रत्यारोपित किये जा सकते हैं। पहले स्नायु (लिगामेंट) रेशम के उपयोग से लिये जाते थे। बाद में कंगारू की पूछ के कण्डरा (टेन्डन) काम में लिये जाने लगे। फिर *कार्बन तन्तुओं का उपयोग* होने लगा। लेकिन इनमें कोई विशेष सफलता नहीं मिली। आज कल **'पोलिस्टर टेपलोन'** का उपयोग किया जाने लगा है। **'कृत्रिम स्नायु'** का लोकप्रिय मोडल लीड्स में निर्मित **'ठाकरे का मोडल'** है। इसकी लागत छ हजार दो सौ पचास रु. है।

'कृत्रिम-घुटने' 'कोवाल्ट-क्रोम' मिश्र धातु के बने है। इसके दो सौ डिजाइन बाजार में उपलब्ध है। इनकी कीमत दस हजार से पच्चीस हजार के

मध्य है। घुटनों का प्रथम प्रत्यारोपण पिछली बार सम्भव हुआ। केवल ब्रिटेन मे तीस हजार कूल्हे प्रतिवर्ष बदले जाते है। इनकी कीमत पचास हजार से एक लाख रुपये तक होती है। 'पोलीइथाइलीन सिरेमिक' तथा मिश्रधातुओं मे बने 'कृत्रिम-कूल्हे' गठिया के रोगियों के लिये काफी कारगर रहे। लेकिन इन्हें भी पाच या दस वर्षो मे बदलना होता है। एक प्लास्टिक का कूल्हा (इजेक्शन मोल्डेड) प्राकृतिक जोड़ का अनुकरण करता है। इसे टाइटेनियम के तन्तुओ से फिट किया जाता है।

'कृत्रिम-कोहनी' भी कोबाल्ट क्रोम मिश्र धातु की बनी हुई है। यह पोलीथीन के कप में फिट होती है। इसमे पाच हजार का खर्चा आता है। दस वर्षो बाद इसे बदलना होता है। गठिया से पीड़ित व्यक्तियो को इससे राहत मिलती है।

पेशियो का प्रत्यारोपण भी पिछले वर्ष ही किया गया है।

रक्त कैंसर (लिक्यूमिया) के रोगियो का इलाज अस्थि-मज्जा का प्रतिरोपण कर किया जाता है। इसमे सात लाख से दस लाख तक का खर्चा आता है।

प्रतिरोपण मे सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हमारा शरीर इसे स्वीकार नही करता। कुछ वर्षों में ये कृत्रिम अग घुल कर नष्ट या बेकार हो जाते है। अब इस प्रकार के प्रयास हो रहे हैं कि ये प्रतिरोपित अंग घुले नही। अब नए सरंध्र-सतह युक्त उपकरण तैयार किये जा रहे हैं जिसमे विद्यमान अस्थि वृद्धि करती है और स्वत: उस स्थान से जुड़ जाती है। इसी प्रकार से 'प्रेस फिट अस्थि' तैयार की जा रही है। ये उपकरण पूरी तरह फिट होते हैं।

विज्ञानी शर्मन का विश्वास है कि भविष्य मे परिष्कृत प्रतिरोपित उपकरण तैयार किये जा सकेंगे। हल्के प्लास्टिक की अस्थियां विकसित की जा रही है। इनमे वही पदार्थ प्रयुक्त होगा जो अस्थियो मे होता है। 21 वीं सदी के प्रारम्भ होने तक ऐसी कृत्रिम-अस्थियां विकसित हो जायेगी जो सामान्य अस्थियो की तरह दिखाई पड़ेगी।

□□

कम्प्यूटर विज्ञान में क्रान्ति

आपने 'आल्टेयर-8800' का नाम सुना होगा। यह संसार का सबसे पहला आधुनिक कम्प्यूटर था। 1975 में निर्मित यह उपकरण आज के स्तर की तुलना में अत्यन्त पुरातन था। यह कई टुकड़ों में बंटा होता था तथा किसी व्यक्ति के द्वारा इसे जोड़ा जाता था। इसमें न ही कुंजी-फलक था और न ही डिस्प्ले। व्यक्ति को सामने के पेनल के खूटेनुमा बटनों का उपयोग कर प्रोग्राम डालना होता था। हमें परिणामों को भी बाइनेरी डिजिट्स में प्रकाश की चमक के सहारे पढ़ना होता था। आल्टेयर में स्मरण की केवल 256 'बिट्स' थी। आज यह बिट्स की संख्या छः लाख चालीस हजार तक पहुँच गई है। आल्टेयर में न ही शब्द का संसाधन (प्रोसेसिंग) था और न ही स्प्रेड शीट्स। आल्टेयर के वक्त एक रेडियो या डिजिटल घड़ी को नियन्त्रित कर सकता था।

लेकिन इन तेरह वर्षों में कम्प्यूटर विज्ञान ने अभूतपूर्व प्रगति की है। आने वाले 13 वर्षों में यह इतनी प्रगति करेगा कि रोबोट भी हमें वास्तविक नजर आने लगेंगे। कुछ विज्ञानियों के अनुसार कुछ ही वर्षों में कार्ड-घड़ी के आकार के कम्प्यूटर उपलब्ध होने लगेंगे जो मानव की सामान्य आवाज समझ सकेंगे। ऐसी 'इलेक्ट्रोनिक-किताबें' उपलब्ध होंगी जिसमें सम्पूर्ण पुस्तकालय डिजिटल फोर्म में समा जायेगी। आपको आश्चर्य होगा, यदि मैं कहूँ कि इस इलेक्ट्रोनिक-किताब का आकार एक छोटी कविता की किताब सा होगा। हमारे पास घरेलू कम्प्यूटर होंगे जिसमें आज की तुलना में हजार गुणा अधिक 'स्मरण-बिट्स' होंगी।

अब तक सिलिकोन पर आधारित चिप्स थे लेकिन विज्ञानी 'गालिलियम-आर्सेनाइड' पर काम कर रहे हैं। इसकी 'कम्प्यूटिंग-शक्ति' बहुत तीव्र है। इसके अतिरिक्त वे एक सुपरकंडक्टिंग धातु के ट्राजिस्टर, 'जोसेफसन-जंक्शन' पर कार्य कर रहे हैं।

कम्प्यूटर-विज्ञानी और अधिक प्रभावी वास्तुशिल्पी (आर्किटेक्चर) की तलाश मे है। वे ऐसे तरीके तलाश रहे है जिससे कम्प्यूटर के मूल तत्वों को व्यवस्थित किया जा सके। एक तकनीक यह है कि कम्प्यूटर के कार्य को अलग-अलग भागों में विभाजित कर लिया जाय एवं शेष उन पर छोड़ दिया जाय। दूसरा तरीका यह है कि 'प्रोसेसिंग-चिप्स' तथा 'स्मरण-चिप्स' के बीच की बाधा को दूर किया जाय। यह बाधा उस समय उत्पन्न होती है जबकि 'प्रोसेसिंग-चिप्स, निर्वात-नलियों के बने होते तथा 'स्मरण-चिप्स' छोटे-छोटे चुम्बकीय छल्लो के बने होते है। चूंकि ये दोनों ही सिलिकोन के बने होते है तो इन्हे समीप लाया जा सकता है। इससे इलेक्ट्रोन संकेतों की दूरी संकुचित हो जायेगी यानि कम्प्यूटिंग तेज गति से होगा। इससे कम्प्यूटिंग-पावर मे दस के फेक्टर में और अधिक वृद्धि हो जायेगी। 'दत्तसंचयन क्षमता (डेटा-स्टोरेज)' में भी काफी प्रगति हुई है। एक आप्टिकल-डिस्क पर दो हजार मेगनेटिक डिस्क या तीन सौ पृष्ठ की एक सौ तीस किताबों के बराबर सूचनायें संग्रहित की जा सकती है। सूचनाओं के संग्रह मे इसी प्रकार मे वृद्धि होती रही तो वह दिन दूर नहीं जब ऐसे विडियो-मूवीज उपलब्ध हो जायेंगे जिसमें उपभोक्ता स्वयं हिस्सा ले सकेगा तथा सचित्र कहानी को प्रभावित कर पायेगा।

विज्ञानी एलन एक कम्पयूटर विशेषज्ञ है। उन्होंने एक 'एपल-कम्प्यूटर' का निर्माण किया है। उनके अनुसार भावी कम्प्यूटर इस प्रकार के होंगे जिसका उपयोग कर निगम के प्रशासक विषम स्थितियों का सामना कर सकेंगे। यदि उन्हें कम्पनी की उत्पादकता बढाने के लिये संगठन में फेर-बदल करना पड़े तो उन्हे कर्मचारियों के रिकार्ड पर निर्भर नही रहना पड़ेगा।

शिक्षा के क्षेत्र में प्रयुक्त कम्प्यूटर 'मेकिन्टोश-कम्प्यूटर' पर विद्यार्थियों को मछली के अध्ययन के लिये कहा जाता है। यह कम्प्यूटर मछली तथा समुद्री पौधों को निर्मित करता है और फिर उन्हे जीवन्त बनाता है। कम्प्यूटर मछली एक वास्तविक मछली की तरह हलचल करने लगती है। आजकल कम्प्यूटर में इस प्रकार के प्रोग्राम फीड किये जा रहे है जो विविध प्रदर्शन करने में सक्षम हो।

कम्प्यूटर तकनीक मे दूसरा परिवर्तन यह होगा कि बाह्य वातावरण को मस्तिष्क के भीतर उत्पन्न किया जा सकेगा। कम्प्यूटर को आपके सिर

पराग न दिया जायेगा। आपके हेल्मेट में एक आंकड़ों युक्त पर्दा लगा दिया जायेगा। यह कम्प्यूटर सिर के घुमाव को बड़ा अचूक मापता है। अतः पर्दे पर जो कुछ भी प्रकट होगा, वह इस बात पर निर्भर करेगा कि आप किस ओर देख रहे हैं। उस समय आप ऐसा महसूस करेंगे कि आप किसी सजीव वातावरण में घिरे हुए हैं।

एक दिन कम्प्यूटर हमारे वातावरण का एक हिस्सा बन जायेगा। कुछ विशिष्ट कार्यों के लिये केवल औजार बन कर नहीं रह जायेगा। हम दत्त (आंकड़ों) के स्रोतों में घिर जायेंगे। फोन पर इलेक्ट्रोनिक सूचनाओं के स्रोतों की पहले से ही भरमार है। शीघ्र ही ये स्रोत ध्वनि तथा तस्वीर भी ले जायेंगे। ये सब 'माइक्रोवेव-ट्रांसपोंडर्स' के नेटवर्क में हमें उपलब्ध होंगे। यह नेटवर्क सेल्यूलर फोन के नेट वर्क की तरह ही फैला होगा। जहां कहीं भी हम जायेंगे, हमें एक 'पोर्टेबल-कम्प्यूटर' से आंकड़े वायरलेस पर प्राप्त होते रहेंगे। हमें ऐसा प्रतीत होगा कि हम कम्प्यूटर नेटवर्क से घिरे हुए हैं।

शनैः शनैः यह 'पोर्टेबल-कम्प्यूटर' छोटे होते जायेंगे। ऐलन ने 'डाइना बुक' का सुझाव रखा। डाइना बुक, एक कॉपी के आकार के कम्प्यूटर है। आजकल प्रयुक्त 'लेपटोप-कम्प्यूटर' केवल 6.5 पोंड के हैं। यह कम्प्यूटर चिप्स के लघुकरण का परिणाम है। इसे 'पोकेट-टी वी' में प्रयुक्त 'द्रव-क्रिस्टल-तकनीक' से संयुक्त किया गया है।

अब जब कि इलेक्ट्रोनिक्स का लघुकरण हो गया है। पर्दे काफी छोटे हो गये हैं, कम्प्यूटर विज्ञानी चाहते हैं कि कुंजी-फलक की प्रणाली को भी हटा दिया जाय। क्योंकि इससे कम्प्यूटर के लघुकरण में अत्यधिक मदद मिलेगी। तोशीबा 'लेपटोप' कम्प्यूटर का केवल कुंजी-फलक ही पचास प्रतिशत जगह घेर लेता है। कुंजी फलक को हटाने का एक तरीका यह है कि कम्प्यूटर किसी व्यक्ति की लिखावट को पढ़ सके। प्रयोक्ता शलाका (स्टाइलस) का उपयोग करते हुए सूचनाएं सीधे स्क्रीन पर लिखेगा। कम्प्यूटर 'कृत्रिम बुद्धि' के सहारे लिखावटी अक्षर पहचानेगा। वर्तमान में कम्प्यूटर केवल प्रथक अक्षर या टाइप किये अक्षरों की ही पहचान कर सकता है।

यहां तक कि शलाका पट्ट भी स्थान घेरता है। इसे हटाना होगा। कम्प्यूटर को और अधिक परिष्कृत किया जा रहा है। विज्ञानियों द्वारा ऐसे

प्रयास किये जा रहे हैं ताकि कम्प्यूटर व्यक्ति की बोली की पहचान कर सके। 2001 तक हमें यह उपलब्धि प्राप्ति होने की संभावना है। वर्तमान में वाणी की पहचान का काम एक मिमित शब्द-ज्ञान की पहचान तक तथा एक व्यक्ति तक संभव है। विज्ञानी चाई फ्यू ली ने इस सीमित दायरे को तनिक फैलाया है। ली का प्रयोगिक प्रोग्राम 'स्फिंक्स' के नाम से जाना जाता है। 'स्फिंक्स' किसी वक्ता की वाणी को धाराप्रवाह समझ सकता है। इसकी शब्द-सामर्थ्य 997 शब्द है।

स्फिंक्स 'छद्म-मार्कोव' प्रणाली पर आधारित है। यह प्रणाली स्वाभाविक ध्वनि तथा प्रयास द्वारा उत्पन्न ध्वनि के मध्य सेतु का कार्य करती है। ली की विधि ध्वनि बलात्मक स्वराघात (स्ट्रेस) तथा स्वर शैली (इन्टोनेशन) का ध्यान रखती है। यह विधि तीन व्यक्तियों के मध्य वाणी की पहचान करती है।

कम्प्यूटर मानव की तरह सहज किसी की वाणी को पहचान ले इसके लिये उसकी सामान्य समझ को बढ़ाना आवश्यक है। जिस प्रकार से एक शिशु भाषा को सामान्य समझ बढ़ने के साथ-साथ सीखता है। यही तरीका कम्प्यूटर को अपनाना होगा। जब कम्प्यूटर की सामान्य समझ परिपक्व हो जायेगी तो उसे व्यक्तियों के समूह में विभिन्न वाणी को पहचानने में कोई कठिनाई नही होगी।

वह समय दूर नहीं जब कम्प्यूटर को औजार की अपेक्षा किसी सहायक के रूप में समझा जा सकेगा।



परिष्कृत रोबोट

जब भी हम रोबोट की बात करते हैं तो हमारे मस्तिष्क में विज्ञान कथाओं में वर्णित रोबोट के चित्र खिंच जाते हैं। हम मानवाकार 'सी-थ्री पी ओ' अथवा गोलार्द्ध सिर वाले 'आर-टू-डी-टू' रोबोट की कल्पना करने लगते हैं। लेकिन यह मंजिल अभी बहुत दूर है। रोबोट का अस्तित्व है, लेकिन ये वास्तव में दानवाकार यान्त्रिक भुजाएं हैं जो विशिष्ट कार्यों के लिये प्रयुक्त होती हैं। ये रोबोट मानव की तरह सोच-विचार, बातचीत करने वाला स्वतंत्र इकाईयां नहीं हैं।

वाहन-उद्योग में कुछ रोबोट के *'इलेक्ट्रोड-अंगुलियां'* पाई जाती हैं जो विभिन्न भागों को जोड़ने का कार्य (वेल्ड) करते हैं, दूसरे कारों पर रोगन छिड़कते हैं। रोबोट मानव से अधिक अच्छा कार्य करते हैं। कुछ रोबोट पदार्थों को उठाने तथा उचित स्थान पर रखने या पहुंचाने का कार्य करते हैं या भारी वस्तुओं को उठाने या उतारने का कार्य करते हैं। ल्यूइसविले केन्टुकी में जनरल इलेक्ट्रिक के यहां ऑप्टिकल सेन्सर से सज्जित रोबोट उपलब्ध हैं जो रेफ्रिजिरेटर के **'सम्पीडित्र'** (कम्प्रेसर) की देख भाल करते हैं। उन्हें उठाते हैं तथा उन्हें एक कन्वेयर से दूसरे कन्वेयर की ओर घुमाते हैं। इसी प्रकार कुछ रोबोट 'अन्वेषक' का कार्य करते हैं। पिछले वर्ष समुद्री-अनुसंधान की फ्रांसिसी संस्था ने समुद्र में डूबे हुए आर. एम. एस. टिटानिक से खजाना प्राप्त करने के लिये रोबोट की भुजाओं युक्त पनडुब्बी का उपयोग किया।

विज्ञान-कथाओं का काल अब निकट आता प्रतीत हो रहा है। इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ में मानव के पास घरों पर **'व्यक्तिगत रोबोट'** होंगे। यद्यपि वे स्टार वार्स के रोबोट की तरह चतुर नहीं होंगे लेकिन वे गृह-बगीचे के पौधों को पानी पिला सकेंगे, पालतु-जानवरों को भोजन खिला सकेंगे, कार की धुलाई कर सकेंगे, सफाई कर सकेंगे, फ्रीज से सामान पकड़ा सकेंगे। आपके घर के छोटे-मोटे कार्य कर सकेंगे। उद्योग तथा सर्विस का कार्य कर सकेंगे। ये रोबोट फल तोड़ने का कार्य आसानी से कर सकेंगे। एक अस्पताल के परिचारक का कार्य वे बड़ी खूबी से निभायेंगे।

इनका उपयोग खतरनाक कार्यों में शीघ्र होने ललेगा। इनका उपयोग किसी नाभकीय संयंत्र में हुई दुर्घटना के मलवे को हटाने, कोयले की खुदाई, अंतरिक्ष-स्टेशन मे मरम्मत आदि मे होने लगेगा।

प्रमुख बात यह है कि रोबोट उपरोक्त कार्यों को स्वयं संभाल लेंगे। आज के रोबोटो को मानव द्वारा बताये गये प्रोग्रामों अथवा निर्देशों के अनुसार चलना होता है।सन् 1979 में तीन मील लम्बे द्वीप पर हुए परमाणु-संयंत्र में विस्फोट से हुए मलबे की सफाई मे अब भी एक रोबोट 'रोवर' लगा हुआ है। छः पहियो तथा एक भुजा से सज्जित इस रोबोट को मनुष्य निर्देश देते है।

केलिफोर्निया मे लोन्ग-बीच स्थित मेमोरियल मेडिकल केन्द्र पर एक रोबोटिक भुजा जो कार्य कर रही है, इसे सुनकर आपको आश्चर्य होगा। यह भुजा रोगी के मस्तिष्क के ट्यूमर का बड़ा अचूक निर्धारण करती है। एक 'स्वायत्त रोबोट' परिस्थिति को समझकर अपनी प्रक्रिया अभिव्यक्त कर सकता है। मंगल पर भेजे जाने वाले रोबोट इसी प्रकृति के होंगे।

रोबोट की स्वायत्तता पर कार्य बड़े जोरो से चल रहा है। 1969 में एस. आर. आई. इन्टरनेशनल ने एक ऐसा रोबोट तैयार किया जो नियंत्रित वातावरण मे स्वयं कार्य करता है। इसमे टेलिविजन केमरा, आनबोर्ड लॉजिक तथा केमरा-नियंत्रण प्रणाली, एक धचका अंकित करने वाली प्रणाली तथा पहिये थे। यह बिना किसी गतिरोध के कमरे में घूम सकता था तथा तत्संबंधित कार्य कर सकता था। यह 'शाकी' के नाम से जाना जाता था। हालांकि यह काफी अपरिष्कृत था। लेकिन इसके विज्ञानी दो बातों पर प्रमुख रूप से ध्यान देने लगे है—एक कृत्रिम-बुद्धि पर तथा दूसरी परिष्कृत दक्षता पर। कृत्रिम-बुद्धि पर इसलिये कि रोबोटिक मस्तिष्क तर्क कर सके, निर्णय ले पाये और सीख सके। परिष्कृत दक्षता की इसलिये कि रोबोट अपने वातावरण को नियन्त्रित कर सके।

रोबोटिक्स अनुसधान में ब्रुकलिन मेसाच्यूसेट्स स्थित न्यूरोजन कोर्पोरेशन के विज्ञानी माइकल कुपर्स्टीन अग्रणी है। उन्होंने एक 'इंटीग्रेटेड रोबोटिक प्रणाली' विकसित की है। उनके रोबोट में दो केमरे, आंखो का कार्य करते हैं तथा एक औद्योगिक संधियुक्त भुजा है जिसके हाथ किसी वस्तु को कसने का कार्य करते हैं। इसमें इमेज प्रोसेसर की सुपर-कम्प्यूटिंग पावर को समाविष्ट किया गया है। कुपर्स्टीन ने न्यूरल नेटवर्क को प्रेरित करने के लिये इमेज प्रोसेसर मे प्रोग्राम डाला। यह न्यूरल नेटवर्क समान प्रोसेसिंग तत्वों का एक सेट है जो किसी पेटर्न की पहचान करता है। यह

मस्तिष्क में तंत्रिका-कार्य प्रणाली का अनुरूप मोडल है। न्यूरल नेटवर्क में विभिन्न प्रोसेसर के बीच संबंध स्थापित करने की ताकत से सूचनाएं उत्पन्न की जाती है। जितनी महत्वपूर्ण सूचना होगी उतना ही न्यूरल नेटवर्क के कनेक्शन अधिक मजबूत होंगे। यदि निरर्थक सूचनाएं है तो कनेक्शन की ताकत कम होगी। विज्ञानी कुपर्स्टीन के रोबोट 'इन्फेन्ट' कहलाते है। इन्फेन्ट का पूरा नाम है—'इन्टरेक्टिव नेटवर्क्स फोर्मिग अडेप्टिव न्यूरल टोपोग्राफीज'। इन्फेन्ट को एक निश्चित पर्यावरण में कुछ कार्य करने को कहा जाता है—वह त्रुटि एवं सुधार की प्रक्रिया अपनाते हुए स्वतः कार्य करता है।

लेकिन फिलहाल जैव भौतिकी विज्ञानी एन्ड्रास पेलियोनिज 'सेरिबेलम' पर कार्य कर रहे। सेरिबेलम पाद की गति में समन्वय स्थापित करता है। उन्होने यह समझने का प्रयत्न किया है कि किस प्रकार सेरिबेलम दो विभिन्न प्रणालियो मे समन्वय स्थापित करता है, एक अंगों को महसूस करना तथा दूसरा वेदियो के द्वारा जटिल कार्यों को किया जाना। रोबोट मे इसी समन्वय प्रणाली को अपनाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

स्टीफन जेकोबसन रोबोट की दक्षता को परिष्कृत करने मे प्रयासरत है। उनके अनुसार इक्कीसवी सदी तक रोबोटिक अवयव आशा के अनुरूप परिष्कृत हो जायेंगे। कालामाजू मिशिगन रोबोटिक्स कम्पनी के वाल्ट वाइजेल ने एक 'वाणी-सक्रिय कम्प्यूटर' तथा 'विकलांगों' के लिये रोबोट तैयार किया है। यह रोबोट विकलांगों को टेलिफोन सेवाओं को सुलभ करवायेगा। उन्हे विश्व के किसी भी कोने से सुविधाएं प्राप्त होंगी। उनको अनेक धन्धे सुलभ हो पायेंगे जैसे कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग, अकाउंटिंग, इन्जीनियरिंग, आर्किटेक्चर तथा डिजाइन वर्क, प्रकाशन तथा अन्य।

इक्कीसवी सदी मे और अधिक वास्तविक रोबोट होंगे। घर पर कार्य करने वाले रोबोट अथवा किसी फर्म पर कार्य करने वाले रोबोट। आप 'घरेलू-रोबोट' से फोन करिये कि वह बगीचे मे पौधे को पानी पिलादे या मेहमान आने वाले है, सफाई करके कमरा सुसज्जित कर दें। रोबोट फोन उठायेगा, हां कहेगा और कार्य मे लग जायेगा। वह फोन पर फर्म को कोका कोला या आपकी पसंद के पेय पदार्थों के लिये आदेश भिजवा देगा। घरेलू रोबोट मौसम के अनुसार सबसे उपयुक्त एवं पसंद के नाश्ते की सूची आपकी पत्नी को सौंप देगा। क्योंकि वह आपकी पसद से वाकिफ हैं, हो सकता है कि उसके कृत्रिम-मस्तिष्क में आपके मेहमानों की पसद की लिस्ट भी सचित हो। यदि वे आपके घर आते रहे और नाश्ता करते रहे हों तो आपका प्यार निश्चित रूप से ऐसे रोबोट के प्रति उमड़ पड़ेगा।

□□

कृषि विज्ञान में प्रगति

अभी हमें कृषि में कोई खास परिवर्तन दिखाई नही पड़ते है, लेकिन इक्कीसवीं सदी में ये परिवर्तन स्पष्ट दिखाई पड़ने लगेंगे। तब कृषकों के पास 'स्वचालित-ट्रैक्टर' होंगे। मनुष्य को इसे चलाने की आवश्यकता नहीं होगी। रेडार अथवा सेटेलाइट के द्वारा इसे निर्देशित किया जायेगा। लेकिन कृषि में प्रमुख परिवर्तन औजारों में इतने नही होंगे जितना कि फसल मे होंगे। बायो इंजिनियर जीन को नियन्त्रित कर 'सूखा-प्रतिरोधित' फसलें उत्पन्न कर पायेंगे। इसके अतिरिक्त वे ऐसी फसलों की उपज पैदा करेंगे जो 'पेस्ट' का सामना कर सकेंगे। हमें विषैले उर्वरकों का इस्तेमाल नही करना पड़ेगा।

भविष्य में जेनेटिक इंजिनियर जीन-नियंत्रण करके फसलो में सुधार कर पायेंगे। अभी चावल, गेहूं, गन्ना, तथा जौ मे जीन-नियंत्रण इतना प्रभावी नही हुआ है। ये फसलें जीन-नियंत्रण का विरोध करती हैं लेकिन अन्य पौधे जैसे तम्बाकू तथा पिट्यूनिया में जीन-नियंत्रण आसान है। दो वर्ष पूर्व जेनेटिक इंजिनियरों ने फायर फ्लाई के जीन का स्थानान्तरण तम्बाकू के पौधे में सफलता पूर्वक किया। तम्बाकू की यह संकर-जाति' अंधेरे में चमकने लगी।

हाल ही जेनेटिक इंजिनियरिंग के जरिये एक ऐसी तकनीक इजाद की गई है कि यह कृषि के लिये वरदान साबित होगी। जेनेटिक इंजिनियरों ने एक ऐसा उपकरण तैयार किया है जिससे हजारो कोशिकाओं मे एक साथ तथा अत्यन्त अल्प समय में परिवर्तन किया जा सकेगा। यह उपकरण एक 'जेनेटिक बन्दूक' होगी। इसे कोर्नेल के विज्ञानियों ने 1984 में तैयार किया। यह 'जेनेटिक-बन्दूक' एक ·22 केलिबर राइफल बेरल के समान होगी। इसे कोशिकाओं पर दागा जाता है।

इस बन्दूक में एक नायलोन का प्रोजेक्टाइल है। इस प्रोजेक्टाइल में लाखों की संख्या में 'टंगस्टन' के माइक्रोस्कोपिक (अत्यन्त लघु) गोले है। प्रत्येक गोले पर डी. एन. ए. के अणु चिपकाए हुए है। इस उपकरण की एक दागने वाली (फायरिंग) पिन एक खाली कारतूस को दागती है

प्रोजेक्टाइल बन्दूक के अन्तिम सिरे तक सरकना है। जेनेटिक बन्दूक के अन्तिम सिरे पर एक छिद्र युक्त स्टील की प्लेट होती है। यह छिद्र एक मिली मीटर का होता है। यह स्टेल प्लेट प्रोजेक्टाइल को तो रोक देती है, लेकिन जीन युक्त टंगस्टन के गोलों को जाने देती है। ये गोले कोशिकाओं पर प्रहार करते है। इससे जीन कोशिकाओं के भीतर चले जाते है तथा उन्हें परिवर्तित कर देते है। माइक्रो स्कोपिक टंगस्टन कणो की गति इतनी तीव्र होती है कि ये कोशिका को बिना किसी प्रकार की क्षति पहुंचाये उसकी दीवार मे प्रविष्ट हो जाते है। जैसे ही डी एन ए के अणु कोशिकाओ के भीतर प्रवेश करते है, ये पौधे के गुणों मे परिवर्तन करना प्रारम्भ कर देते हैं। परम्परागत तरीकों की अपेक्षा इस प्रकार से जीन छोड़ने में यह फायदा है कि इसमे लाखों कोशिकाए एक साथ परिवर्तित की जा सकती है। जेनेटिक इंजिनियर को एक-एक कोशिका को परिवर्तित नही करना पड़ता है।

यह जैविक-बेलिस्टिक उपकरण **'बायोब्लास्टर'** या **'बायोलिस्टक'** कहलाता है। जून 89 मे कोर्नेल जीव-विज्ञानी जोन-सेन्फोर्ड ने दो अलग-अलग प्रयोगो में इस उपकरण का सफलता पूर्वक इस्तेमाल किया है। एक प्रयोग में उन्होने शैवाल-कोशिका का जीन दाखिल कराया। उन पौधो मे प्रकाश-सश्लेषण प्रारम्भ हो गया। दूसरे प्रयोग मे उन्होंने यीस्ट कोशिकाओ के जीन का प्रहार किया। उन पौधे में ऊर्जा उत्पन्न होना प्रारम्भ हो गई।

कृषि-शोध में भी इसी प्रकार की तकनीक काम मे ली जा रही है। टंगस्टन के बजाय शोधकर्ता **'स्वर्ण-कणों'** का उपयोग करते है और बन्दूक के बजाय कणो को भेजने के लिये वे **'इलेक्ट्रोस्टेटिक-रिपलशन'** का प्रयोग करते है। कृषि-विज्ञानी सोयाबीन पर प्रयोग कर रहे है।

स्वर्ण कणो के प्रहार से बने छिद्र इतने छोटे होते है कि कोशिका के दीवारों की क्षति नगण्य होती है। **'विदेशी जीन'** सोयाबीन पौधे मे इस कदर समाहित हो जाते है कि इसके गुणो में परिवर्तन कर देते है। शीघ्र ही सोयाबीन की ऐसी किस्में उपलब्ध होने लगेगी कि उनमे प्रोटीन की मात्रा बढ जायेगी और प्रति एकड अधिक पैदावार होने लगेगी। निकट भविष्य मे ऐसी फसलें तैयार की जायेगी जो कीट-प्रतिरोधी होंगी।

जेनेटिक इंजिनियरिंग से निर्मित जीवाणु 2001 तक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगेंगे। जीवाणु की एक किस्म ने पहले ही पत्तियों पर पाला पड़ने से रोकने में सफलता पाई है। कुछ रूपान्तरित जीवाणु प्राकृतिक

अपतृण (वीड) नियंत्रक रसायन उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं। अतः ये विषैले शाक नाशी (हरबिसाइड) का स्थान ले लेंगे।

वर्तमान में उर्वरक भूमि पर समान रूप से बिखेरे जाते है। मिट्टी का नमूना लिया जाता है। पुष्टिकर (न्यूट्रिएन्ट) का मापन किया जाता है तथा मिट्टी को किस प्रकार के उर्वरक की आवश्यकता होगी, इसका विश्लेषण किया जाता है, तब सम्मिश्रण का प्रयोग किया जाता है।

लेकिन भूमि का संगठन प्रत्येक एकड़ पर बदल जाता है। न्यूट्रिएन्ट का एक के लिये आदर्श-मिश्रण दूसरे के लिये खराब हो सकता है। समान रूप से मिश्रण का उपयोग करना हानि कारक है। इससे जमीन का पानी दूषित होता है। 21 वीं सदी के प्रारम्भ तक जमीन के प्रत्येक वर्ग फुट का सदुपयोग हो पायेगा क्योंकि प्रत्येक वर्ग फुट जमीन को उपयोगी उर्वरक की अचूक मात्रा मिल-पायेगी।

मिनेसोय स्थित वाकोनिया मे 'सोइल-टेक' अनुसंधान शाला ने इस विधि को विकसित किया है। पहले जमीन या खेत के 'इन्फारेड-एरियल' फोटोग्राफ लिये जायेंगे। जमील के विभिन्न कार्बनिक पदार्थ सूर्य की उष्मा को अलग-अलग गति से पुनः विकिरित करते है अतः फोटो मे उनके अलग-अलग रंग उभर आते है। फोटो के आधार पर जमीन की विभिन्न किस्मों को अलग-अलग सेक्टर में बांट दिया जाता है। तब प्रत्येक सेक्टर की मिट्टी का नमूना लिया जाता है। उसकी जांच की जाती है। तब एक सेक्टर के आधार पर उर्वरक का मिश्रण तैयार किया जाता है। अत मे 'रेडियो-एन्टेना' के द्वारा अचूक स्थान-निर्धारण किया जाता है। एक स्प्रेडर मशीन जमीन पर दौड़ाई जाती है। इसका सम्बन्ध एक कम्प्यूटर से होता है जो जमीन का डिजिट युक्त नक्शा पढ़ता है। इससे स्प्रे-मशीन जैसे-जैसे जमीन पर चलती है उसका उर्वरक-मिश्रण स्वतः बदलता जाता है।

21 वी सदी तक पॉयलट रहित मशीनें होंगी। ट्रैक्टर को किसी व्यक्ति द्वारा चलाने की आवश्यकता नही रहेगी। अगली सदी में उर्वरकों के कारण भूजल के प्रदूषण की समस्या नही रहेगी। अनाज के पैदावार मे अभूतपूर्व प्रगति होगी। 21 वी सदी में हम परम्परागत कृषि से छुटकारा पा जायेंगे। □□

सुपर कंडक्टर और चुम्बकीय उपयोग

इक्कीसवीं सदी में हमें ऊर्जा ताप नाभिकीय संलयन से प्राप्त होगी। संलयन क्रिया तभी संभव है जबकि प्लाज्मा का तापक्रम दस लाख डिग्री हो। किसी भी पदार्थ की दीवार प्लाज्मा का तापक्रम काफी कम कर देगी। अतः सुपर कंडक्टर से इतना चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न किया जायेगा कि प्लाज्मा का ताप गिरे नहीं।

सामान्य तांबे के चालक एक हजार एम्पीयर प्रति वर्ग सेन्टीमीटर का विद्युत घनत्व प्रवाहित कर सकते हैं। लेकिन नायोबियम-टाइटेनियम अथवा नायोबियमटिन सुपर कंडक्टिंग तार एक लाख एम्पियर प्रतिवर्ग से.मी. का विद्युत घनत्व प्रवाहित कर सकते हैं। इससे कुंडलियों का आकार बहुत छोटा हो जायेगा। सुपर कंडक्टर के उपयोग से बिजली की क्षति बहुत कम होगी।

लेकिन सुपर कंडक्टर में यह सबसे बड़ी कमी है कि ये केवल अत्यंत निम्न तापक्रम पर ही प्राप्त किये जा सकते है। सुपर कंडक्कर 23 डिग्री केल्विन या इससे कम तापक्रम पर प्राप्त होते हैं। 23 डिग्री केल्विन से आशय है शून्य डिग्री सेंटीग्रेड से 250 डिग्री सेंटीग्रेड नीचे या-250 डिग्री से.। केल्विन परमशून्य से प्रारम्भ होता है। परम शून्य-273 डिग्री सेंटीग्रेड अथवा 460 डिग्री फारेन्हाइट के बराबर होता है। हीलियम गैस 4.2 केल्विन पर द्रवित होती है। पहले यह समझा जाता था कि तापक्रम कम करने से चालकता भी बहुत कम हो जाती है और एक स्थिति पर शून्य हो जाती है लेकिन विज्ञानी केमन लिन्ह ओन्स को उस समय आश्चर्य हुआ जब विद्युत धारा को 4.2 केल्विन से नीचे हीलियम में से गुजारा गया। उन्होंने देखा कि हीलियम में से विद्युत धारा निर्बाध गति से बह रही है। धारा का सम्पूर्ण प्रतिरोध शून्य हो गया। इस प्रकार से सुपर-कन्डक्टर की खोज हुई। विज्ञानी ओन्स को हीलियम को द्रवित करने में सफलता प्राप्त करने पर 1913 में नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। ओन्स ने पारे को ठंडा होने पर सुपर कन्डक्टिंग पाया। इसी प्रकार से कांस्य तथा शीशा दोनो सुपर कंडक्टर पाये गये। कुछ पदार्थ एक निश्चित तापक्रम के नीचे सुपर कंडक्टर हो जाते है। यह

तापक्रम जिसके नीचे कोई पदार्थ सुपर कंडक्टर हो जाते है, 'ट्रांजिशन तापक्रम' कहलाता है। ट्रांजिशन तापक्रम, सुपर कंडक्टर की एक खास विशेषता है। यदि सुपरकंडक्टर को चुम्बकीय क्षेत्र में ट्रांजीशन तापक्रम के ऊपर रखा जाता है तथा इसे ट्रांजिशन तापक्रम के नीचे ठंडा करके लाया जाता है तो एक और असाधारण घटना घटती है। जैसे ही वह पदार्थ सुपर कडक्टर बनता है, यह अपने भीतर समाहित चुम्बकीय क्षेत्र को फेंक देता है। यह **'मीसनर प्रभाव'** कहलाता है। 1933 में इस प्रभाव की खोज हुई। इसने सुपर कंडक्टिविटी को नया आयाम दिया।

ओन्स की खोज के पश्चात **'ट्रांजिशन तापक्रम'** बढ़ाने में लगभग 50 वर्षों तक कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। 1985 तक विज्ञानी सुपर कडक्टर का ट्रांजिशन तापक्रम केवल 23 केल्विन तक बढ़ा सके। कितना अच्छा होता यदि सुपर कंडक्टर हमें कमरे के तापक्रम पर उपलब्ध होने लगते। लेकिन सितम्बर 1986 का वह अद्भुत दिन। आई ज्यूरिच के विज्ञानी मूलर एवं बैडनोर्ज ने लेन्थेनम, बेरियम तथा तांबे के मिश्रित ऑक्साइड को 30 केल्विन पर सुपर कंडक्टर पाया। सिरेमिक पदार्थों में सुपर कंडक्टिविटी पाने पर इस क्षेत्र में भूचाल आ गया। सिरेमिक सुपर कडक्टर 77 केल्विन पर उपलब्ध हो गये। यह द्रवित नाइट्रोजन का क्वथनांक है। इस क्वथनांक पर द्रवित नाइट्रोजन बड़ी आसानी से उबलने लगता है।

तब संयुक्त राष्ट्र संघ के विज्ञानी पालने चुने यिट्रियम, बेरियम तथा तांबे का मिश्रित आक्साइड तैयार किया। यह मिश्रित आक्साइड 90 केल्विन पर सुपरकंडक्टर का व्यवहार दर्शाता।

आश्चर्य है कि सुपरकंडक्टर धातुओं के बजाय विभिन्न आक्साइड के मिश्रण होते है। इनका 'क्रिस्टल लेटिस' असाधारण होता है। इसमे तांबा तथा आक्सीजन अणु चादर नुमा तल बनाते है। ये तल बेरियम -ऑक्सीजन अथवा रेअर-अर्थ ऑक्सीजन अणुओं के तल से अलग तथा दूर होते हैं। विज्ञानी आर्थर फ्रीमैन के अनुसार ताबा-आक्सीजन तल धात्विक तथा चालक (कंडक्टिक) होते हैं जबकि अन्य अणुओं के तल विद्युत रोधी (इन्सुलेटिंग) होते हैं।

सुपर कंडक्टर में आणविक स्तर पर क्या कियाएं होती है, इसकी तस्वीर सन् 1957 मे कुछ स्पष्ट हुई।

इसी वर्ष विज्ञानी जॉन बारडीन, लिओन एन. कूपर तथा जे. श्राइफर ने सुपर कंडक्टर के बारे में एक सिद्धांत प्रतिपादित किया। यह सिद्धान्त

'बी. सी. एस.' के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार सुपर कंडक्टर मे इलेक्ट्रॉन के कुछ असाधारण जोड़े बन जाते है। ये 'कुपरयुग्म' कहलाते है। इलेक्ट्रोन के ये जोड़े क्रिस्टल लेटिस मे निर्बाध गति से बहते रहते हैं तथा विद्युत धारा का सम्पूर्ण प्रतिरोध समाप्त हो जाता हैं। इलेक्ट्रोन-युग्म का यह् बंध तभी टूटता है जब तापक्रम क्रांतिक (क्रिटिकल) बिन्दु से ऊपर हो जाता है। इस खोज के आधार पर इन तीनो विज्ञानियो को 1972 के नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

बहुत से सुपर कंडक्टिंग उपकरण 'जोसेफसन जंक्शन' प्रणाली का उपयोग करते है। जब दो सुपर कंडक्टर के सिरो को जोड़ा जाता है तो वह जोड़ जोसेफसन जंक्शन कहलाता है।

सुपर कंडक्टर के बीच 'जोसेफन जंक्शन' प्रणाली के उपयोग से अनेक फायदे है।

समुद्र मे सौ मीटर की गहराई पर स्थित पनडुब्बी से सम्पर्क अत्यधिक निम्न तीव्रता के 'सुपर कंडक्टर मेग्नेटिक सैंन्सर्स' द्वारा बड़ी आसानी से किया जा सकता है। सुपर कंडक्टर का केवल दस से. मी. व्यास तथा तीस से. मी. लम्बा तार ही इन कार्य के लिये उपयुक्त है। जबकि वर्तमान मे तीन सौ मीटर लम्बे एन्टेना के उपयोग से ही यह सभव है।

जब सुपर कंडक्टर तार की कुंडली से जोसेफसन जंक्शन जोड़ा जाता है यह विधि 'सुपर कंडक्टिग' क्वाटम इंटरफियरेंस डिवाइस (स्क्यूड) कहलाती है। आसपास के क्षेत्र में तनिक से चुम्बकीय क्षेत्र परिवर्तन को स्क्यूड अंकित कर लेती है। यह 10-11 गॉस तक के चुम्बकीय क्षेत्र मे परिवर्तन को संकेत दे देती है तथा मेगनेटोमीटर से बहुत अधिक सुग्राही है। जासूसी तथा रक्षा के क्षेत्र मे इसका उपयोग किया जा सकता है।

सुपर कंडक्टर का उपयोग 'डिजिटल' तथा 'डेटा प्रोसेसिंग' में किया जा सकेगा। इसके उपयोग से कम्प्यूटर टैक्नॉलाजी को एक नया आयाम मिलेगा।

सुपर कंडक्टर मानव के मस्तिष्क तथा हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्म क्रियाओ को अंकित कर सकेंगे। ये क्रियाए इन अंगो के चुम्बकीय क्षेत्र मे परिवर्तन से संबंधित होंगी। इसके अतिरिक्त भी अनेक ऐसे अभिज्ञ है, जहां सुपरकंडक्टर का उपयोग होगा। निकट भविष्य मे ऐसे अनेक क्षेत्रों का पता चलेगा। अतः वह दिन दूर नहीं जब सुपर कंडक्टर हमारे जीवन से क्रांतिकारी बदलाव लायेंगे। □□

धरती पर जीवन का प्रादुर्भाव

प्राचीन समय में जीव का विकास जीव से ही माना जाता था, लेकिन अब यह धारणा अधिक बलवती हुई है कि रासायनिक विकास से ही स्वाभाविक रूप से जैव विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई है। यानि निर्जीव पदार्थ से ही अन्ततोगत्वा जीवन का प्रादुर्भाव हुआ। यदि ऐसा हुआ तो मानववादी दृष्टि-कोण में भूचाल पैदा हो जायेगा।

हमें इस बात पर विचार करना होगा कि क्या ऐसा सम्भव है? हमने इस दिशा में कितनी प्रगति की है?

एक समय डार्विन ने कहा था कि फिलहाल यह सोचना अर्थहीन है कि जीवन की उत्पत्ति हुई। कोई फिर यह भी सोच सकता है कि पदार्थ की उत्पत्ति कैसे हुई? लेकिन बीसवीं शताब्दी के विज्ञानियों का ध्यान इस बात पर गया और वे इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न करने लगे। सन् 1922 में एक रूसी विज्ञानी अलेक्जेण्डर ओपेरिन ने जीवन के प्रादुर्भाव सम्बन्धी परिकल्पना संसार के समक्ष रखी, जिसका परीक्षण किया जा सकता था। इसके अनुसार प्रकृति की ऊर्जा का उपयोग करके निर्जीव पदार्थों से 'कार्बनिक-पदार्थों' का निर्माण किया जा सकता था। यह ऊर्जा बिजली, सूर्य तथा पृथ्वी की स्वयं की रेडियो-धर्मिता से प्राप्त की गई थी, तथा इसका प्रहार अकार्बनिक-अणुओं पर करके उन्हें कार्बनिक अणुओं में बदल दिया। पहले यह समझा जाता था कि अकार्बनिक से कार्बनिक पदार्थ का निर्माण नहीं किया जा सकता। कार्बनिक पदार्थ जीव से ही प्राप्त होते हैं। प्रथम बार बने ये कार्बनिक पदार्थ पृथ्वी की झीलों तथा समुद्रों के आदिकालिक घोल में समाहित हो गये।

ओपेरिन की परिकल्पना पर विज्ञानी स्टेनले मिलर ने सन् 1950 में प्रायोगिक परीक्षण किये। उस समय वे शिकागो विश्वविद्यालय के मात्र एक छात्र थे। उन्होंने जल को मिथेन, अमोनिया से मिश्रित किया। ये कार्बन तथा नाइट्रोजन के पदार्थ थे जो आदिम-पृथ्वी पर व्याप्त थे। तब उन्होंने इस मिश्रण को गर्म किया तथा इसमें विद्युत स्पार्क का प्रहार किया। एक सप्ताह

पश्चात् मिथेन का पांच प्रतिशत भाग **'अमीनो-अम्ल'** मे परिवर्तित हो गया जो प्रोटीन निर्मित करते थे। ये प्रोटीन जनन के लिये प्रमुख उत्प्रेरक पदार्थ है। इस परीक्षण ने संसार भर में हलचल मचा दी थी।

उसके बाद से जीवन के उद्भव सम्बन्धी अनेक प्रयोग किये गये तथा नये-नये यौगिकों का निर्माण किया गया जो शरीर की इकाई कोशिका के निर्माण के लिये आवश्यक थे। अमीनो अम्ल के अतिरिक्त **'न्यूक्लिओटाइड'** तथा **'लाइपिड'** निर्मित किये गये। न्यूक्लिओटाइड आर. एन. ए. तथा डी. एन. ए. के मूलभूत घटक हैं जो जीवन की इकाईया है।

जीव-विज्ञानियो के अनुसार जीवन क्या है? यह भी हमे समझ मे आना चाहिये। उसी पदार्थ में जीवन माना जाना चाहिये जो जनन तथा वृद्धि की क्षमता रखते हो। आधारभूत दृष्टिकोण से सोचें तो डी. एन. ए. अणु अपनी प्रतिकृति निर्मित करते है जो केवल जीव ही कर सकते है। अत इन्हें हम जीवन की इकाई के अणु कह सकते हैं। लाइपिड से कोशिका झिल्ली का निर्माण होता है। प्रयोगशाला मे अनेक बार किये गये प्रयोग यह सिद्ध करते है कि यदि अमीनो अम्ल तथा न्यूक्लिओटाइड को प्राकृतिक वातावरण ही प्रदान किया जाय तो वे भी प्रोटीन तथा न्यूक्लिक अम्ल मे परिवर्तित हो जायेंगे। इन कृत्रिम तरीको से विशिष्ट 'बहुलक' लगातार बने हैं। रासायनिक प्रक्रिया मे जब सरल अणु, जटिल अणु मे परिवर्तित होते है तो ये बहुलक कहलाते है। बहुलको का लगातार निर्मित होना यह सिद्ध करता है कि रासायनिक विकास ने प्रथम कार्बनिक अणु के निर्माण में वही भूमिका निभाई जिस प्रकार से प्राकृतिक चरण ने जीव के सम्पूर्ण विकास मे निभाई थी। सेनडियेगो स्थित केलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के विज्ञानी मिलर कहते है "हमने सम्पूर्ण रहस्य का पर्दाफाश करके यह जाना कि अकार्बनिक तत्वो से कार्बनिक पदार्थ का निर्माण कैसे हुआ।" अब अगली सीढ़ी मे यह जानना है कि ये कार्बनिक पदार्थ संगठित होकर कैसे एक प्रतिकृति कर (रिफलेकेटिंग) कोशिका का निर्माण करते हे।

मियामी विश्वविद्यालय के विश्वविख्यात् विज्ञानी सिडनी फोक्स पिछले 20 वर्षों से इस प्रश्न पर विचार कर रहे है। उनका विश्वास है कि उन्होंने **'प्रोटीनोइड माइक्रोस्फीअर'** मे 'जेनेटिक कोडिंग' प्रणाली की उत्पत्ति का पता लगा लिया है। प्रोटीनोइड माइक्रोस्फीअर को हम **'आदि-कोशिका** (प्रोटोसेल) भी कह सकते है। प्रयोगशाला में निर्मित आदि-कोशिकाओं मे अमीनो अम्ल पाया जाता है अमीनो अम्ल चयनित रूप से सयुक्त होते हुए **'आद्य-प्रोटीन'** (प्रिमिटि व प्रोटीन) का निर्माण करता है। यह फिर सगठित

होकर 'प्रोटीनोइड-माइक्रोस्फीअर' का निर्माण करते हैं। प्रोटीनोइड माइक्रोस्फीअर द्वारा कोशिका के सभी कार्य यहाँ तक कि उपापचय (मेटाबोलिज्म) तथा जनन भी आदिम रूप से सम्पन्न होते हैं। ये स्फीअर प्रकाश के प्रति भी अपनी विद्युतीय प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करते है जो आधुनिक जीव के न्यूरोन द्वारा उत्सर्जित सकेतो से मिलती जुलती है। जब माइक्रोस्फीअर का कृत्रिम जीवाश्मीभवन (फोसिलाइजेश) किया गया तो ये बनावट मे 'आदि-शैवाल' के प्राचीनतम जीवाश्म से हूबहू मिलते थे।

विज्ञानी फोक्स के हाल के प्रयोग दर्शाते है कि माइक्रोस्फीअर मे प्रचुर मात्रा में विद्यमान 'लाइसिन' नामक अमीनो अम्ल एक उत्प्रेरक का कार्य करता है तथा अमीनो-अम्ल तथा न्यूक्लिक-अम्ल की शृंखला का निर्माण करता है। अब क्योकि एक ही उत्प्रेरक दोनो शृंखलाओं पर कार्य करता है तो यह दोनों प्रक्रियाओं को जोड़ भी सकता है। अब विज्ञानी सिडनी फोक्स पदार्थ लाइसिन की बहुलता से युक्त प्रोटीनोइड माइक्रोस्फीअर से इतना विशाल प्रोटीन का निर्माण करने में लगे हुए हैं जो संगठित होकर कोशिका का निर्माण कर सकें।

ला जेला साल्ट इन्स्टीट्यूट, केलिफोर्निया के रसायनविद् लिसली आरजेल ने प्रायोगिक तौर पर यह दर्शाया है कि आर. एन. ए. स्वयं अकेला ही 'प्रतिकृति' निर्मित कर सकता है। जब उन्होंने न्यूक्लिक अम्ल आर. एन. ए. का एक लघु धागा एक घोल मे डाला जिसमे वे सभी चार तरह के न्यूक्लिक ओटाइड उपस्थित थे, जो जेनेटिक कोड के अक्षर (लैंटर्स) बनाते हैं, तो उन्होंने पाया कि न्यूक्लिक ओटाइड, आर. एन. ए. के धागे पर पंक्तिबद्ध एकत्रित होकर जुड़ गये। इस प्रकार से आर. एन. ए. के इसी धागे पर प्रतिकृति धागे का निर्माण हुआ। अर्थात् डी. एन. ए. के समान ही आर. एन. ए. की भी दोहरी कुडलित सीढ़ी बनी। इससे स्पष्ट था कि बिना किसी प्रोटीन एन्जाइम के न्यूक्लिक अम्ल 'प्रतिकृति' की प्रक्रिया प्रारम्भ कर सकते है अब समस्या यह है कि किस प्रकार से आर. एन. ए. की इस दोहरी सीढ़ी को पृथक किया जाय।

प्रयोगशाला के दूसरे परीक्षण यह दर्शाते हैं कि कोशिका मे न्यूक्लिक ओटाइड से प्रतिकृति धागे का निर्माण ठीक उसी प्रकार से होता है जैसा कि कोशिका मे होता है। यद्यपि यह अत्यन्त सरल तरीके से होता है। जब जैवरासायनविद माइकेल होविश ने अमीनो अम्ल तथा न्यूक्लिक ओटाइड को जल मे डाला, उसने देखा कि ये पदार्थ अत्यन्त सरल तथा आदिम रूप मे

शृंखलाबद्ध हुए। यह प्रयोग इस बात की ओर संकेत देता है कि किस प्रकार से 'जेनेटिक कोड' प्रारम्भ हुआ।

ग्लास्गो विश्वविद्यालय के ए. जी. केरन्स स्मिथ का कहना है कि आदिम-काल में आर. एन. ए. एक सरल रिपिलकेटिंग बनावट मृदा से विकसित हुए।

अब हमें यह देखना होगा कि प्रकृति ने किस प्रकार से जीवन के इन प्रारम्भिक तत्वों का निर्माण किया। मृदा से हम जीवित हुए, मृदा में ही हम समा जायेंगे। यह मृदा किस प्रकार से जीवन के इन तत्वों का निर्माण करती है।

मृदा सिलकोन, आक्सीजन, एल्यूमिनियम तथा हाइड्रोजन के क्रिस्टल 'लेटिस' से बनी है। यह पाया गया कि जैसे-जैसे क्रिस्टल वृद्धि करते जाते है, इनमे गल्तियां भी होती है यानि एल्यूमिनियम का परमाणु सिलिकोन की जगह प्रति स्थापित हो जाता है। जर्मन विज्ञानी आर्मिनवीज ने पाया कि ये गल्तियां विद्युतीय-आवेश के पेटर्न के रूप होती है। एक्स रिसर्च सेन्टर नासा के विज्ञानी जेम्स लॉलिस ने कहा कि ये विद्युतीय आवेश, मृदा की शुष्क सतह पर, किसी उथले जल के तालाब से न्यूक्लिओटाइड को इलेक्ट्रोनिक रूप से आकर्षित करते है जहां ये शृंखलाबद्ध होते हैं। यह देखा गया कि मृदा ऐसे न्यूक्लिओटाइड का चयन करती है जो शृंखला को स्थायित्व प्रदान करती है।

विज्ञानी लीलिया कोयेन ने कहा कि विकृत मृदा पर्यावरण से ऊर्जा ग्रहण करती है तथा फिर उसे छोड़ती है। इस गुण के कारण रासायनिक क्रिया प्रारम्भ होने मे सहायता मिली तथा प्रथम कार्बनिक अणु का निर्माण हुआ। यह इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करती है कि मृदा ही एक 'आद्य-जीवन प्रणाली' है।

केयरन्स-स्मिथ परिकल्पना के अनुसार यदि मृदा की सतह कार्बनिक-अणुओं की शृंखला के लिये आधार का कार्य करती है तो डी. एन. ए का अणु भी यहां विकसित किया जा सकेगा जो जेनेटिक सूचनाओं को एकत्रित करने का कार्यभार सम्भालेगा।

केयरन्स-स्मिथ की नवीन परिकल्पना ने भी विज्ञानियों को जीवन की उत्पत्ति के बारे में नये सिरे से सोचने के लिये बाध्य किया है।



विषाक्त पर्यावरण : एक चुनौती

आज हमारा देश अकाल की विभीषिका से त्रस्त है। भोर की पहली किरण के साथ ही यह समस्या और अधिक विकट हो जाती है। हम सभी जानते है कि इसका कारण मौसम की बेरुखाई है। यह मौसम क्यों बेरुखा हुआ, इसका कारण है वनों को उजाड़ बनाना। मनुष्य ने निजि स्वार्थवश इन वनो का सफाया किया। चाहे यह सफाया चूल्हा जलाने के लिये किया गया हो, चाहे फर्नीचर का निर्माण करने के लिये।

वन-सम्पदा के नष्ट होने का वृक्षों की कटाई ही केवल एक कारण नही है बल्कि औद्योगिक अपशिष्टो का हवा तथा जल मे घुल-मिलना भी है। मौन घाटी (साइलेंट वेली) आज उजाड़ हो गई है। मानव तो क्या मौन घाटी का 'पाइलिया काडराय' पुष्प भी इस उजाड़पन पर अपने अश्रु बहा रहा था। आखों को लुभाने वाली हरीतिमा अब पीलासपन के कारण चुभने लगी थी। इसका एक मात्र कारण था मानव द्वारा स्थापित हाइडल प्रोजेक्ट। पालघाट की चिमनियो से उठते धुएं ने यहा के पर्यावरण को विषाक्त बना दिया। एक वह समय था जब यह घाटी बाघ तथा पेंथर की दहाड़, गाइन टेल्ड मेक (बंदर) की तेज तथा तीखी आवाज तथा नीलगिरि लंगूर की किलकारियो से गूंजा करती थी। समस्त वातावरण जीवन्त था। लेकिन अब यह निर्जीव सा लगता है।

वायु तथा जल प्रदूषण आज एक गंभीर समस्या बन गई है।

हमारे वायुमंडल में कार्बन, नाइट्रोजन, आक्सीजन, फास्फोरस तथा तथा गंधक के नियमित चक्र बने हुए है। औद्योगिक अपशिष्टो तथा अन्य कारकों से ये चक्र प्रभावित तथा दूषित होने को वायु-प्रदूषण कहा जाता है तथा जल के दूषित होने को जल प्रदूषण। इन प्रदूषणों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता हैं।

टेक्सटाइल मजदूरों के सास संबंधी रोग हो जाते हैं। ये लोग 'फुफ्फुस कार्पासता' नामक रोग से ग्रसित हो जाते हैं। शीशा उद्योग के मजदूर सिर दर्द, अनिद्रा, भूख से कमी, कब्ज, कोलिक, मांसपेशी की शक्ति में कमी तथा

थकान से व्यथित रहते हैं। लेड एसिड स्टोरेज के श्रमिक कभी-कभी 'पेरास्थेसियो' के भी शिकार हो जाते हैं। शीशा उद्योग के 56 प्रतिशत श्रमिको के रक्त मे शीशे की मात्रा 80 माइक्रोग्राम प्रति डी. एल. से अधिक पाई गई। 44 प्रतिशत श्रमिकों के मूत्र मे शीशे की मात्रा 150 माइक्रोग्राम प्रति डी. एल. से अधिक पाई गई। प्रिंटिंग प्रेस तथा स्मेल्टिंग संयत्रो के श्रमिको मे भी शीशे की उच्च मात्रा पाई गई।

वायु प्रदूषण का बच्चो पर अत्यधिक कुप्रभाव पड़ता है। वायु प्रदूषण के कारण शिशु के प्रथम वर्ष मे मृत्यु दर मे भारी वृद्धि हुई है। शिशु के फुफ्फुस की कार्यशीलता मे प्रदूषण के कारण भारी कमी आ जाती है इससे शिशु की श्वसन नलिका का निचला भाग क्षतिग्रस्त हो जाता है तथा वह ब्रोंकाइटिस व दमा का शिकार हो जाता है। वायु मंडल मे सल्फरडाई आक्साइड तथा ओजोन की सम्मिलित अल्प मात्रा के कारण शिशु की श्वास-नली सिकुड़ जाती है।

जल प्रदूषण प्रमुखतया औद्योगिक अपशिष्ट के जल में मिलने से होता है। विज्ञानियों के अनुसार देश का 70 प्रतिशत जल मनुष्य के उपयोग की दृष्टि से हानिकर है। देश के 142 प्रमुख नगरो मे से केवल 8 में सीवेज के पानी को शुद्ध करने की उचित व्यवस्था है, 62 नगरो मे थोड़ी बहुत, पर शेष 72 नगर तो सारी की सारी गंदगी नदियों में उंडेल रहे हैं। दुर्गापुर कारखाने में कोयले को धोने मे प्रयुक्त पानी नदी मे पुन बहाया जाता है जिससे लगभग 10 प्रतिशत कोयला एव विषैले पदार्थ नदी (दामोदर) मे आ जाते हैं।

जल प्रदूषण का एक बड़ा स्रोत एल्कोहल उद्योग भी है। इन उद्योगो मे निकलने वाली गंदगी गहरे लाल रंग के द्रव के रूप मे होती है। इसमे सल्फर के यौगिक होते हैं जो हाइड्रोजन सल्फाइड में बदल जाते हैं तथा रंग काला हो जाता है। भारत मे लगभग 105 शराब के कारखाने हैं। इनसे 6765 मिलियन लीटर गंदा द्रव निकलता है जो जल को प्रदूषित करता है। 15 दिन से रखे हुए गंदे द्रव में मिथेन की मात्रा 50 प्रतिशत के लगभग होती है। पाली मे रंगाई व छपाई (कपड़ो की) से वहा का जल प्रदूषित हो गया है। ब्यावर मे सीमेंट कारखानो की संख्या निरंतर बढ़ रही है। इससे वहा जल प्रदूषण बढता जा रहा है।

आगरा के पास मथुरा में साठ लाख टन के तेल शोधक संस्थान से ताजमहल प्रभावित हो रहा है। इस संस्थान से प्रतिदिन लगभग 120 ट

सल्फर डाई आक्साइड, 150 टन तक कार्बन मोनोक्साइड और 100 टन तक हाइड्रोकार्बन वायुमंडल में जा मिलते है।

स्वचालित वाहनों से भी प्रदूषण फैलता है। उनसे उत्पन्न प्रदूषक तत्व हैं कार्बन मोनोक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड (नोक्स) जले तथा अधजले हाइड्रोकार्बन धूए के कण। कार्बन मोनोक्साइड रक्त में प्रवेश कर उसकी आक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता को कम करती है। इसके प्रभाव से सिर मे दर्द एवं दिल का दौरा पड़ सकता है। नाइट्रोजन के आक्साइड (नोक्स) गंधक के आक्साइड (सोक्स) की अपेक्षा अधिक हानिकार होते है। नोक्स फेफड़े के तन्तुओं को सतत रूप से नष्ट करते रहते है। अधिक मात्रा मे इसके प्रयोग से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

पश्चिम के अत्यंत विकसित देश यथा अमरीका नार्वे, स्वीडन, कनाडा, पश्चिमी जर्मनी आदि देश निरन्तर बढती अम्ल वर्षा (एसिडरेन) से अत्यंत चिंतित है। जर्मनी तथा अपलेचियन पर्वतों के वृक्षों के अध्ययन से पता चला कि सोक्स की अपेक्षा नोक्स मोटर वाहनों, पावर प्लांट्स उर्वरक भूमि आदि से अधिक उत्पन्न होता है।

इन्ही वाहनों के पैट्रोल ईंधन से 90 प्रतिशत शीशा पर्यावरण में आ मिलता है। बोम्बे, कलकत्ता, मद्रास, अहमदाबाद, दिल्ली तथा अन्य महा-नगरों में इसका दुष्प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। बोम्बे के वातावरण मे फोर्ट मे फुल मार्केट, तथा किंग्स सर्कल पर शीशे की मात्रा 500-590 नेनोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर पाई गई। यहा ट्रेफिक की घनता अत्यधिक है। वोर्ली, बाइकला तथा परेल मे 320-385 नेनोग्राम शीशे की मात्रा पाई गई। ये औद्योगिक वस्तियां हैं तथा यहां वाहनो का ट्रेफिक कुछ कम है। ट्रोम्बे तथा देवनार के वायुमंडल में शीशे की मात्रा 82-85 नेनोग्राम पाई गई। ये ऐसे शहरी स्थल है जहां ट्रेफिक अपेक्षकृत बहुत कम है। इससे स्पष्ट होता है कि पर्यावरण में शीशे की मात्रा का तथा वाहनो का सीधा संबंध है।

इस दशक के अंत तक बोम्बे के पर्यावरण में डी. डी. टी की मात्रा अधिकतम पाई गई। डी. डी. टी. यकृत में एकत्रित होकर उसे कमजोर बनाती है। मिट्टी का तेल तथा डी. डी. टी. यकृत के विटामिन ए को नष्ट कर देती है। डी. डी. टी. युक्त भोजन करने से खुश्की हो जाती है छोटी आंत में वसा के पाचन से किया गया भोजन अपना जहरीला प्रभाव दिखाता है। गैस बनने लगती है। व्यक्ति थका-थका महसूस करता है। आखे थकी-थकी रहती है जो विटामिन ए की कमी का सूचक है।

स्टारवार्स के पक्षधर राष्ट्र परमाणु हथियारो का जखीरा खडा करते चले जा रहे हैं। अब तक दस हजार मेगाटन शक्ति के हथियार एकत्रित किये जा चुके हैं। एक तनिक-सी चिनगारी ही इस सारे ससार को तबाह करने के लिये काफी है। और इस तबाही का परिणाम होगा——नाभकीय शीत। पृथ्वी का सम्पूर्ण वातावरण बदल जायेगा। यह वातावरण अत्यन्त विषैला होगा। पृथ्वी पर से जीवन लगभग समाप्त हो जायेगा।

कोलोरेडो के विज्ञानी जोनवर्क के अनुसार परमाणु युद्ध के परिणाम स्वरूप फैली तूफानी आग और धमाको से लगभग 2 अरब टन धूआं उत्पन्न होगा। इसमे धूएं मे विषैले रसायन——'पायरोटोक्सिन' होगे। इससे शहरो मे मौत का ताडव-नृत्य होगा। यह ताडव-नृत्य इतना भयानक होगा कि समूची पृथ्वी इसमे समा जायेगी। पृथ्वी का वायुमडल तथा भूमि पूरी तरह से प्रदूषित हो जायेगी। फिर न जाने कब यह इस भयानक प्रदूषण से मुक्त होगी। नाभकीय शीत वातावरण के कम्प्यूटर मोडल से पता चला कि विषैले पाइरोटोक्सिन के रूप मे प्रमुखतया फोस्जीन, हाइड्रोजन क्लोराइड गैस तथा डायोक्सीन गैसें होगी। इसके अतिरिक्त अन्य अत्यन्त घातक गैसें वातावरण मे फैल जायेगी। विषैली गैस के रिसने का दुष्प्रभाव कैसा होता है इसका अदाजा आपको भोपाल-त्रासदी से हुआ होगा।

अकेले एस्बस्टस से 'रेडियो एक्टिव फाल आउट' का दस प्रतिशत केन्सर होता है। यदि हम सभी पदार्थों का कार्सिनोजेनिक प्रभाव देखें तो यह फाल आउट से अधिक हो जायेगा। तब हमारी यह पृथ्वी रासायनिक कचरे का ढेर होगी।

परमाणु-युद्धो के परिणामस्वरूप आकाश मे इतना धूआ उठेगा कि यह सूर्य की रोशनी को ढक लेगा यह धूआ वातावरण के स्वच्छ-अभियान को भी छिन्न-भिन्न कर देगा। भूमि से आकाश में इतना अधिक गधक उठेगा कि हम इसे एक विशाल मल के बादल के रूप मे सूघेंगे।

नाभकीय-युद्ध की समाप्ति के बाद जैसे ही आकाश से धूआ छटेगा तो सूर्य का प्रकाश नाइट्रोजन तथा गंधक के योगिकों को आक्सीकृत कर देगा। आक्सीकृत योगिक, जल वाष्प से मिल कर पृथ्वी पर 'अम्ल की वर्षा' करेगा। जो कई वर्षों तक समाप्त नही होती। इसके अतिरिक्त सूर्य की रोशनी नाइट्रोजन डाई आक्साइड से क्रिया करके ओजोन बनाती है। यह ओजोन हाइड्रो कार्बन से क्रिया करके घना 'फोटो केमिकल' कोहरा निर्मित करती है। यह विषाक्त घना कोहरा सम्पूर्ण पृथ्वी पुनः ढक लेगा।

ऐसे मे कौन चाहेगा कि विश्व-युद्ध की भयानक चिनगारी सुलगे?



विज्ञान-कथाओं का दर्शन

मानव ने चन्द्रमा पर अपना पहला कदम रखा। उसने परमाणु ऊर्जा से स्वयं का विनाश किया। किसी समय में यह विचार एक निरी कल्पना थी लेकिन आज यह वास्तविकता बन गई है। विज्ञान कथाओं का "कल्ट" ही कुछ ऐसा है। किसी काल में संजोयी कल्पना भविष्य की वास्तविकता होती है।

प्रख्यात फ्रांसिसि कथाकार "जूलवर्न" द्वारा "ए ट्रिप फ्रौम द अर्थ टू मून" नामक कथा में संजोई कल्पना आज एक वास्तविकता बन गई। इस विज्ञान कथा में वर्णित यान का आकार यू. एस. अपोलो अंतरिक्ष यान से मिलता-जुलता है। आश्चर्य तो यह है कि यह यान भी चन्द्रमा के लिये फ्लोरिडा से छोड़ा गया था। विज्ञान कथा की यह काल्पनिकता ठीक सौ वर्ष पश्चात् वास्तविकता में बदल गई। विज्ञान कथाकार एडवर्ड एवरेट हेल ने अपनी कथा "द ब्रिक मून" में प्रथम बार किसी कृत्रिम उपग्रह की कल्पना की थी। इसे भी पृथ्वी की एक निश्चित कथा में स्थापित किया गया था तथा इसका उपयोग नौ सचालन के लिये किया गया था। सन् 1869 में संजोई यह कल्पना आज एक वास्तविकता है।

उस जमाने में कोई सोच भी नही सकता था कि चन्द्रमा की यात्रा सम्भव है या फिर कृत्रिम उपग्रह का निर्माण होगा क्योंकि उस समय तो हवा में यात्रा करना भी एक कल्पना थी। अतः इन विचारों को हास्यास्पद समझा गया। विज्ञान कथाओं में वर्णित विचारों को केवल कपोल-कल्पनायें समझा गया। लेकिन ये कथायें केवल कपोल-कल्पनायें नही होती। इसके पीछे एक सुदूर वैज्ञानिक सूत्र होती है। ये कथायें नवीन वैज्ञानिक नियमों की पालना करती हैं। ऐसे नियम जो अभी अल्पवर्धित है लेकिन आने वाले समय मे निश्चित रूप से वैज्ञानिक नियम बन जायेंगे। यह आवश्यक नही कि वह सोच वैज्ञानिक नियम बन ही जाये। परिकल्पनायें जन्म लेती है, उनकी मृत्यु

होती है। लेकिन उसके पीछे वैज्ञानिक शोध अवश्य होता है। विज्ञान कथाओं को पढ़कर जन सामान्य को ऐसा लगता है कि ये कथायें तो निरी-कल्पनायें हैं लेकिन ऐसा नहीं है। और यदि हम ऐसा मान भी ले कि विज्ञान-कथाएं, गपोल-कथायें होती है तो भी यह सत्य नहीं है कि गपोल-कथायें, विज्ञान-कथाएं हो सकती हैं। विज्ञान-कथाएं तथा गपोल-कथाएं दोनों असाधारण असामान्य होती है लेकिन विज्ञान-कथाएं मानव के मीमांसात्मक-साहित्य के लिये आविष्कारशील होती हैं।

विज्ञान कथायें वास्तव में हमारी औद्योगिक और वैज्ञानिक क्रान्तियों की उपज है। इसे तकनीकी ने एक नया रूप प्रदान किया है, एक नया सांस्कृतिक बल दिया है। विज्ञान कथायें साहित्य की एक नई विधा है। विश्व साहित्य को इसने एक नई जमीन दी है, एक नया आयाम दिया है।

हमारी भावनायें विश्व में हुए आविष्कारों और तकनीकी परिणामों से शून्य नहीं हो सकती। विज्ञान कथाएं इन्हीं भावनाओं को उजागर करती है। क्या तकनीक तथा वैज्ञानिक खोजों से हमारी भलाई होगी या फिर हमारा विनाश होगा? इसका अहसास हमें विज्ञान कथाएं कराती है। लेख तो केवल वैचारिक धरातल तैयार करते हैं लेकिन ये कथाएं संवेगात्मक स्तर पर हमसे जुड़ती है। अतः विज्ञान कथाएं साहित्य का एक हिस्सा है इन्हें, पृथक दृष्टि से देखना बेमानी होगा।

विज्ञान कथाओं की यह विशिष्टता रही है कि ये ठोस तथ्यों से समझौता नहीं करती, ये अतार्किक होने का छद्म करती हैं। यहां तक कि ये कथाएं मानव के अस्तित्व को भी नकार देती है।

हमारा समाज दिन-प्रतिदिन भौतिकवादी होता जा रहा है विज्ञान कथायें इसे रोमांच से वशीभूत करती है। विज्ञान कथाएं अमूर्त को जोखिम भरा (एडवेन्चर्स) बनाती है तथा कॉस्मोस को आध्यात्मिकता से जोड़ती हैं। यानि ये विपरीत ध्रुवों को मिलाने का प्रयास करती हैं। यह ऐसा क्यों नहीं कर सकती? इसके संसार में अंतरिक्ष को तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है।

विज्ञान कथाओं की शैली इतनी अनोखी है कि यह अमूर्त विचारों को मूर्त अभिव्यक्ति देती है अतः ये अति-चित्रात्मक (पिक्टोरिअल) होती हैं। यही कारण है कि आम पाठक की रुचि इन कथाओं के प्रति होती है। लेकिन

कुछ कथायें क्लिष्ट होती है तो इसका कारण है कि पाठक कथाकार की कल्पना के साथ चित्रमय दौड़ नही लगा पाता। विज्ञान कथाओं का कथानक आगे बढ़ते हुए अचानक असाधारण हो जाता है। पाठक वर्ग की कल्पना बहुत पीछे छूट जाती है। यह उसे सोच के एक अन्य स्तर मे ले जाती है, एक अन्य आयाम मे ले आती है, एक ऐसा आयाम जहा सब कुछ अलौकिक होता है, असामान्य होता है। अत ये "मांइंड स्ट्रेचिग" होती हैं। विज्ञान कथाओ की क्लिष्टता का एक अन्य कारण यह भी है कि जिस तकनीकी शब्दावली का वह प्रयोग करता है, पाठक उसे आत्मसात् नही कर पाता। मान लीजिये किसी विज्ञान कथाकार ने "टाइरेनोसौरस रेक्स" का प्रयोग किया। तब यह आवश्यक हो जाता है कि पाठक वर्ग के दिमाग में उसका चित्र खिंचे या किसी सिद्धान्त का प्रयोग किया है तो उसे वह ज्ञात हो। विज्ञान कथाकार उसके सिद्धान्त का वर्णन नही करता है, केवल उसे प्रतीक के रूप मे इस्तेमाल करता है। कथा में उसका वर्णन करना सम्भव नही होता क्योंकि उसका असर कथा रस पर पड़ता है।

विज्ञान कथाएं स्वत. विकसित हुई हैं, यह किसी एक या दो व्यक्ति की खोज नहीं है, जैसे-जैसे विज्ञान तथा तकनीकी विकसित होती गई, ये भी विकसित होती चली गई।

विक्टोरियन काल मे या उन्नीसवी शताब्दी मे भविष्य जीवन मे परिवर्तन का भविष्य था। जीवन तेजी से बदल रहा था। हर आविष्कार जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन ला रहा था। इससे जन-मानस मे एक नई उत्सुकता जागृत हो रही थी। विज्ञान कथाये इनका जवाब थी। विज्ञान कथायें केवल आपकी उत्सुकता को ही शांत नही करती है बल्कि यह "बदलाव" से सरोकार रखती हैं।

विक्टोरियन काल मे जूलवर्न तथा एच. जी. वेल्स का कार्य विज्ञान कथाओं की शैली में इतना घना तथा प्रभावी था कि इन्हें विज्ञान कथाओं का प्रवर्तक कहा गया। बीसवी शताब्दी के प्रथम अर्द्ध काल में ह्यूगो गर्नबेग प्रभावी रहे। उन्होने "अमेजिग स्टोरीज" के नाम से विज्ञान कथा की प्रथम पत्रिका प्रकाशित की। बाद का काल जोन डब्ल्यू केम्पबेल जूनियर का रहा। उन्होंने "एस्टाउन्डिग स्टोरीज" नामक पत्रिका को नया शीर्षक प्रदान किया। नाम था—"एनेलोग"। वो आधुनिक विज्ञान कथा के पिता कहलाके। ह्यूगो

गर्नबेक के अनुसार "एडगर एलेन पो" ने गई कथा को जन्म दिया। वह "साइंटिफिक्शन" के पिता कहलाये। साइंटिफिक्शन, साइंटिफिक फिक्शन का ही लघु रूप है। ह्यूगो गर्नबेक के अनुसार साइंटिफिक्शन जूलवर्न, एच जी. वेल्स, तथा एडगर एलन पो की जैसी कथायें हैं। इन कथाओं में एक आकर्षक रोमांच, वैज्ञानिक तथ्यों तथा भविष्य सूचक दृष्टि से मिला होता है।

ग्रेडपोन के अनुसार विज्ञान कथायें भविष्योन्मुखी होती है। ये कथाएं भविष्य में झांकने का प्रयत्न करती है तथा यह अनुमान लगाती है कि भविष्य में क्या घट सकता है। भविष्य में क्या "घटेगा" की अपेक्षा घट सकने पर विज्ञान कथाएं अधिक जोर देती है। अत ये सम्भावना की अपेक्षा "सभाव्य" या सत्याभास पर अधिक बल देती है।

मानव ने प्रकृति पर विजय पाने की कोशिश की। जब कोई विज्ञानी प्रकृति के साथ खिलवाड़ करता है तो उसे इसकी सजा भुगतनी होती हैं। प्रकृति इसका प्रतिशोध लेती है। विज्ञान कथाओं में यह कथ्य बहुतायत से मिलता है। प्रतिशोध की देवी (निमेसिस) ने अक्खड़पन पर हमेशा विजय पायी है, और इससे जन्मा है विज्ञान कथाओं का निराशावाद। कौन भूल सकता है मेरी शैली की रचना 'फ्रैंकेन्स्टीन' को। विज्ञान कथा क्लासिक की यह सर्वोत्तम कृति है। विक्टर फ्रैंकेन्स्टीन स्वयं अपनी रचना के द्वारा पीछा किया जाता है। वह जिस मानसिक सत्रास की स्थिति से गुजरता है, पाठक का हृदय तक दहल जाता है। निराशवादी (डिस्टोपियन) विज्ञान कथाओं की कमी नही रही है। निराशावादी विज्ञान कथाओं की चार अवस्थाएं है। विश्व के निराशवादी क्रिया-कलाप प्रथम अवस्था मे आते है, इसकी परिणति ससार के विनाश से होती है। जब मानव का स्वयं का अस्तित्व खतरे में पड जाता है तो यह निराशावादी विज्ञान कथाओं की दूसरी अवस्था होती है। पश्चन्महाविपत्ति (पोस्ट-कटस्ट्राफि) इसकी तीसरी अवस्था है। महा-विपत्ति के बाद की घटना इसमे शामिल है। निराशावादी विज्ञान कथाओं की चौथी दशा का पृथ्वी से कोई सम्बन्ध नही है। पृथ्वी के परे के संसार में हुई विनाश लीलाए इसी की चौथी अवस्था है। हक्सले के 'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' तथा ऑरवेल के (1984) से कौन परिचित नही है। लेकिन निम्न विज्ञान कथाकारों की निराशावादी विज्ञान कथाओं को भी नही भुलाया जा सकता। आल्फ्रेड बीस्टर की विज्ञान कथा 'द डिमोलिस्ड मेन' (1953), राय ब्रैडबरी की फेरनहाइट 451 (1954), थोमस एम डिस की कन्सन्ट्रेशन केम्प (1965), हेरी हेरीसन मेक रूम (1966), ब्रेन एल्डिस टोटल एन्वायरोमेंट (1968)।

बाह्य अंतरिक्षवासियो द्वारा पृथ्वी पर आक्रमण की कथाएँ भी कम लोकप्रिय नही हैं। एच. जी. वैल्स की वार ऑफ द वर्ल्ड (1897), डो. जी. कोम्पट्न की 'साइलेंट मल्टम्ट्यूड', (1966), बेलार्ड की 'द ड्रॉन्ड वर्ल्ड' (1962), के. चेपक की 'वार विथ न्यूम्ट्स' (1936) कथाएँ प्रमुख है।

आशावादी विज्ञान कथाओं में जोर्ज टुकर्स की 'ए वोयेज टू द मून', बेलेमी का 'डॉ. हाइडेनटोवप्स प्रोसेस', ए. इ. वानवॉट की 'फुल फिलमेंट' प्रमुख है।

विज्ञान कथाएँ अमूर्त को मूर्त का स्वरूप प्रदान करती है। कही-कही मूर्त तथा अमूर्त मिल जाते है तथा कही स्वतत्र सत्ता के रूप मे व्याप्त रहते है। विज्ञान कथाओ मे अमूर्त का मानवीकरण (परसोनीफिकेशन) नही होता वल्कि अमूर्त स्वय मूर्त में बदल जाता है। फलफिलमेंट का नायक इनर्जी के आकार को मूर्त रूप प्रदान करता है। इनर्जी ह्युमेनोइड का आकृति धारण करती है। यह ह्युमेनाइड इनर्जी को मूर्त रूप होता है।

विज्ञान कथाओं मे सिद्धान्त क्रियात्मक हो जाते है। यहा तक कि परिकल्पनाए एव वैज्ञानिक चिंतन भी क्रियात्मक स्वरूप धारण कर लेते है। 'टेक्यान कण' इस समय एक गणितीय चिंतन है लेकिन विज्ञान कथा मे इसका उपयोग एक रॉकेट के रूप में संभव है। फलफिलमेंट का नायक 'नो स्पेस' का उपयोग करके दूरस्थ व्यक्तियों के मस्तिष्क से संपर्क करता है तथा ह्युमेनाइड स्थान पर भेजने में सक्षम होता है।

विज्ञान कथाएँ समाज मे बदलाव को प्रेरित करती है। नये आविष्कारो के लिये भूमिका तैयार करती है। एक भविष्य दृष्टा बनने की कोशिश करती है। विज्ञान कथाएँ नूतन पृष्ठभूमि तलाश करती है। ये अन्वेषणात्मक होती है। ब्रह्माण्ड मे मानव की स्थिति का विवेचन विज्ञान कथाएं ही करती है। अतः विज्ञान कथाओ को नकारा नही जा सकता।

□□

हिन्दी-अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली

अन्तरिक्ष-जैविकी	*Space Biology*
अंतर्तारकीय	Inter-Stellar
अंतर्ग्रहीय	*Inter-Planetary*
अंतः स्रावी	Endocrinal
अवतरण प्रोब	Landing Probe
अभिग्राही	Receiver
अतीन्द्रिय	Extra-Sensory
अपस्मारी	Epileptic
अस्थि प्रत्यारोपण	Bone-Transplant
अस्थि मज्जा	Bone Marrow
अपतृण	Weed
अकार्बनिक	Inorganic
अम्ल वर्षा	Acid Rain
आंतरिक डिफाइब्रिलेटर	Inner Dibbrillator
आकाश गंगा	Galaxy
आपेक्षिक आर्द्रता	Relative Humidity
आवासीय प्रयोगशाला	Habitable Laboratory
आनुष्ठानिक	Ritual
आकाशीय अवगम	Spatial Perception
आनुवंशिकता	Heridity
आर टू डी टू	R.2-D2
आदिकालिक घोल	Primitive Soup
आदिम	Primitive
आद्य प्रोटीन	Primitive Protien
आदि शैवाल	*Primitive Algae*
आक्सीजन	Oxygen (O_2)
आयामी	Dimentional
ओज़मा	Ozma
औद्योगिक अपशिष्ट	Industrial Waste

उल्का पिंड	Meteorite
उपास्थि	Cartilege
उत्तक	Tissue
उद्भासित	Expose
उद्दीपक	Stimulus
एम. आर. आई.	Magnetic Resonance Imaging
कृत्रिम संकेत	Artificial Signal
क्रिटोन का स्वचालित चिकित्सक	Automated Doctor of Criton
कृत्रिम अवयव	Prostheses
कृत्रिम हाथ	Artificial Hand
कृत्रिम अंगुलियां	Artificial Finger
कृत्रिम टांगें व पांव	Artificial Leg and Foot
कृत्रिम कोक्लिया	Cochlea Implant
कृत्रिम ब्लैडर स्फिक्टर	Artificial Bladder Sphincter
कृत्रिम घुटने	Artificial Knee
कृत्रिम कूल्हे	Artificial Hips
कृत्रिम बुद्धि	Artificial Intelligence
कृत्रिम उपग्रह	Artificial Satellite
कटक	Ridge
कार्बन डाइ आक्साइड	Carbon Di Oxide (CO_2)
कक्षीय प्रॉब	Orbital Probe
कण्डरा	Tendon
कर्ण प्रत्यारोपण	Ear Transplant
केन्द्रीय स्नायु-संस्थान	Central Nervous System
कार्बनिक	Organic
कंठ प्रत्यारोपण	Larynx Transplant
कुंजी फलक	Key Board
कुंडली	Coil
कूपर युग्म	Cooper Couple
क्वांटम सिद्धान्त	Quantam Theory
खगोलविद	Astro Nomer
ग्रहीय प्रणाली	Planetary System
ग्रहीय पदार्थ	Planetary Matter

गुरुत्व त्वरण	Acceleration Due to Gravity
गोलार्द्ध	Hemisphere
चल-रोबोट	Mobile Robot
चिप्पड	Chips
चतुर्विम	Fourth Dimention
चद्र अड्डा	Lunar Base
जीन-नियत्रण	Gene Manipulation
जीवाश्म शैवाल	Fossil Algae
जीवाश्म परागकण	Fossil Pollens
त्वचा-रोपण	Skin Graft
ताप नाभकीय सलयन	Thermal Nuclear Fission
तरंग लम्बाई	Wave Lenth
त्वरण	Acceleration
त्वरण ह्रास	Deceleration
दरार	Fault
दसवा ग्रह	Tenth Planet
दत्त सचयन क्षमता	Data Storage Capacity
देइमोस	Dimos
दीर्घवृतीय	Elliptical
दुर्लभ मृदा	Rare Earth
धचक	Tugging
धूमकेतु	Comet
ध्रुवीय टोपी	Polar Cap
नाभकीय शीत	Nuclear Winter
निराशावाद	Dystopian
पलायन वेग	Escape Velocity
परिचालक भुजा	Manipulator Arm
पुष्टिकर	Nutrient
प्रति द्रव्य	Anti Matter
प्रति कृति	Duplicate Copy
पर्पटी	Crust
पर्यावरण	Enviroment
पेस्ट	Pest

प्रक्षेपण स्थल	Launching Pad
पीयूष	Pituitary
प्रतिरोपित	Transplant
प्लेंक-स्थिरांक	Plank Constant
प्रतिदीप्त	Luminiscent
प्रतिरक्षा प्रणाली	Immunity
पेशीय थकान	Muscullar Fatigue
पेशिया	Muscles
प्रोटोन थिरेपी	Proton Therapy
प्रभामंडल	Aura
फुफ्फुस	Lung
बलात्मक स्वराधात	Stress
बाह्य अंतरिक्ष	Outer-Space
बुध	Mercury
ब्रह्माण्डीय चेतना	Cosmic Consciousness
भविष्योन्मुखी	Apocalyptic
भारहीनता	Weightlessness
मणिभ	Crystal
मानव रहित	Unmanned
माइक्रोवेव जनित्र	Microwave Dynamo
मनश्चिकित्सक	Psychiatrist
माइक्रोप्रोसेसर चालित	Microprocessor Activated
भुजा	Arm
यान्त्रित भुजाएं	Machenical Arm
रेडियो धर्मिता	Radio Activity
रेडियो दूरदर्शी	Radio Telescope
रेमजेट	Ramjet
रोबोट तकनीक	Robot Technic
रोबोटिक भुजा	Robotic Arm
रक्त परिवहन	Blood Circulation
रक्त वाहिनिया	Blood Versels
लघु उच्च आवृत्ति	Short High Frequency
लघुकरण	Miniaturization

विषाणु	Virus
विकिरण	Radiation
व्यक्तिगत रोबोट	Personal Robot
विकलांग	Handicapped
वायु-प्रदूषण	Air Pollution
विज्ञान कथा	Science Fiction
शाकनाशी	Herbicide
शारीरिय	Anatomical
शलाका पट्ट	Stylus Board
संश्लिष्ट	Synthesis
समस्थानिक अनुपात	Isotopic Ratio
सौर मंडल	Solar System
सौर बादवान	Solar Sail
समानव	Manned
सूक्ष्म शरीर	Astral Body
सम्मोहन	Hipnotism
संक्रमण	Infection
संश्लिष्ट त्वचा	Synthetic-Skin
सुषुप्तावस्था	Hibernation
संश्लिष्ट रक्त	Synthetic Blood
स्मरण	Memory
स्वर शैली	Intonation
संधियुक्त भुजा	Jointed Arm
स्वचालित ट्रैक्टर	Automated Tractor
सूखा प्रतिरोधित	Draught Registant
संकर जाति	Hybrid
सोक्स	Sox
सम्भाव्य	Possible
स्नायु कोशिका	Nerve Cell
हिमिकरण	Freez
हृदय-प्रत्यारोपण	Heart Transplant
क्षुद्र-ग्रह पट्टिका	Asteroid Belt
त्रि-आयामी	Three Dimentional

हरीश गोयल

जन्म : 4 नवम्बर 1950 ई० (अजमेर)

शिक्षा : बी एस.सी., एम.ए. (अंग्रेजी-साहित्य)

प्रकाशन : देश-प्रदेश की अनेक पत्र-पत्रिकाओ मे वैज्ञानिक लेख और विज्ञान-कथाएँ प्रकाशित एव अनेक रचनाओ पर विविध पुरस्कारो से सम्मानित ।

पुरस्कार : राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा विज्ञान-कथा 'शुक्रलोक मे एक राजकुमारी' पर 'बाल-साहित्य' का पुरस्कार । 'अखिल भारतीय बाल शिक्षा परिषद्, दिल्ली से राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान एव राष्ट्रीय शिक्षा अनुसधान परिषद् (एन. सी. इ. आर टी.) के संयुक्त तत्वावधान मे आयोजित पत्रवाचन प्रतियोगिताओ मे तथा राज्य शिक्षा अनुसधान परिषद् द्वारा अपने लेखो पर राज्य स्तरीय पुरस्कारो की प्राप्ति ।

"वैज्ञानिक कथाओ के ताने-बाने बुनने मे निष्णात श्री गोयल की कथायें एव उपन्यास प्रमुख पत्र-पत्रिकाओ में विद्वानो द्वारा समीक्षित होकर अनुशंसित हुई हैं ।" (राजस्थान-साहित्य अकादमी)

प्रकाशित कृतियां :

विज्ञान कथा—कालजयी यात्रा, तीसरी आँख ।

वैज्ञानिक आलेख—21वी सदी की ओर : विज्ञान के बढते चरण ।

बाल एवं किशोर-साहित्य :

शुक्रलोक मे एक राजकुमारी, रहस्यमय सौर-परिवार, सितारो का संसार, किरणो का मायालोक : ब्रह्मा, परखनली डायनोसॉर, काम्लेक्स-39, अज्ञात ग्रह की ओर आदि ।

सम्प्रति . राजस्थान शिक्षा विभाग में अंग्रेजी भाषा के व्याख्याता पद पर कार्यरत ।

स्थायी पता : 59, शास्त्री नगर, अजमेर ।